ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भारत के कृषि क्षेत्र में ग्रामीण बैकिंग का महत्व

डॉ. शैलेष कुमार जैन
सह–प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (व्यवहारिक अर्थशास्त्र एवं व्यवसाय प्रशासन) डी.एन. जैन महाविद्यालय, जबलपुर
श्रीमती माया यादव
शोधार्थी, (व्यवहारिक अर्थशास्त्र एवं व्यवसाय प्रशासन) रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

भारतीय कृषि प्रारम्भ से ही असंगठित व्यवसाय के रूप में चिर परिचित रही है और इसीलिये कृषि में वित्त की समस्या वाणिज्य और उद्योग के लिये वित्तीय की समस्या से भिन्न रही है। कृषि वित्त सम्बन्धी आवश्यक्ताओं पर प्रायः दो पहलुओं से विचार किया जाता रहा है। एक तो ऋण उद्धेश्य के पहलु से और दूसरा कृषक की ऋण सम्बन्धी आवश्यक्ता पर ऋण के भुगतान की अवधि से। क्योंकि भारतीय कृषक गैर संस्थागत स्त्रोतों से वित्त सम्बन्धी आवश्यक्ताओं की पूर्ति करता रहा है और शोषण का शिकार होता गया है। फलस्वरूप 1972 में भारत सरकार द्वारा गठित बैकिंग कमीशन ने ग्रामीण बैंक की दिशा में सबसे पहलें सुझाव दिया।

बैकिंग कमीशन की स्थापना, वाणिज्यिक बैकों के संगठन, ढांचे एवं उनके कार्य संचालन तथा सम्पूर्ण कार्यरत साख संस्थाओं से तुलना करने हेतु की गयी थी। इसके साथ बैंकिग व्यवस्था में वाणिज्यिक व सहकारी बैंको का समन्वित विकास, विशेष तौर से भौगोलिक विस्तार करना था। वाणिज्यिक बैंको के विस्ताार कार्यक्रम व सीमाओं को देखते हुए, बैकिंग कमीशन ने ग्रामीण क्षेत्रों में उनके अपर्याप्त पूर्णाता के भविष्य को पूर्व में ही जान लिया था।

बैकिंग कमीशन के अनुसार ''ग्रामीण बैंक'' बनाना तीन संभावित उपायों से हो सकता है। (1) प्राथमिक कृषि समितियों को ''ग्रामीण सहकारी बैंक'' के रूप में, पूर्ण बैंकिग सुविधाओं सहित तथा इसकी सहायक क्रियाओं सहित संचालित की जायेगी, (2) वाणिज्यिक बैंको की आश्रित/ पूरक ढाँचे के अंतर्गत, एक उत्तम प्राथमिक कृषि साख समिति की स्थापना की जाये, (3) एक वाणिज्यिक बैंक के द्वारा अपने स्वंय के अनुदान से स्थापित किया जाये।

आयोग की राय में, एक ''ग्रामीण बैंक'' को द्वितीय व तृतीय उपायों के तहत स्थापित किया जाये तथा प्रथम उपाय के तहत ''ग्रामीण सहकारी बैंक'' से पृथक एक ''ग्रामीण सहायक बैंक'' के नाम से स्थापित किया जाये। इसके अन्तर्गत यह सुझाव दिया गया कि उपर्युक्त बैंको की 51 प्रतिशत पूँजी का प्रायोजक बैंको द्वारा व शेश राशि स्थानीय लोगों के द्वारा जो उस क्षेत्र से संबधित है, प्रदान की जायेगी। इसके साथ यह भी सुझाव दिया गया कि ग्रामीण बैंक चाहे वे ग्रामीण सहकारी बैंक हो या ग्रामीण सहायक बैंक हो, उनको अपनी साख क्रियाओं एवं बैंकिंग क्रियाओं को अपने अंशधारियों या सदस्यों तक ही सीमित नहीं रखना होगा बल्कि इसके साथ–साथ सामान्य जनता जो इस क्षेत्र की है, उनमें से एक नया ''एसोसिएट सदस्यों'' हेतु स्थायी किया जावेगा। बैंकिग कमीशन के विचार से ग्रामीण बैंक द्वारा एक निश्चित गाँवो का समूह जिसमें 5,000 से 20,000 तक की जनसंख्या होगी, को पूर्ण किया जावेगा।

बैंकिग कमीशन द्वारा अपने अतिरिक्त सुझावों के अन्तर्गत ग्रामीण बैंक की स्थापना की क्रम श्रंखला का सुझाव भी दिया इसके तहत पूँजी संरचना प्रबंध संरचना, कार्मिक नीतियाँ, लाभांश नीतियाँ (अंशधारियों के लिए)ब्याज की दर नीतियाँ, जमा, बीमा, अन्य सरकारी संस्थाओं के संबंध आदि थे। आयोग ने ग्रामीण बैंको के प्राथमिक चरणों में होने वाली समस्यायें व इनके विस्तार में जो कठिनाइयाँ आयेंगी आदि के बारे में अपना सुझाव दिया, अतः उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखकर सिर्फ कुछ ही ग्रामीण बैंको की स्थापना के प्रथम 5 वर्षो तक वाणिज्यिक बैंको के 'सहायक बैंक के रूप में रखा गया।

बैंकिग कमीशन का ''ग्रामीण बैंक'' की अवधारणा से तात्पर्य समस्त मध्यम व छोटे वर्गो को साख सुविधा का लाभ देना है। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि इन बैंको में ग्रामीण जनता के पहुँच होना आवश्यक है, ताकि उन्हें समस्त साख सुविधा प्राप्त हो सके। भारत सरकार द्वारा बैंकिग कमीशन के ''ग्रामीण बैंक'' की स्थापना के सुझाव को नजरअंदाज करते हुए इस संदर्भ में एक 20 सूत्रीय कार्यक्रम, घोषणा

1 जुलाई 1975 को की गयी।

बैकिंग आयोग ने ग्रामीण बैंको के लिये निम्न कार्य निर्धारित किये ऋण अग्रिम करना, सहायक बैकिंग सेवाएँ प्रदान करना, किसानों को कृषि आगत और यंत्र उपलब्ध करना, उत्पादनों के विपणन में सहायता करना, गोदामों का रख–रखाव करना तथा परिचालन क्षेत्रों के गाँव के समग्र विकास में सहायता करना। इस बात पर बल दिया गया कि ग्रामीण बैंक सीमांत, छोट और मध्यम किसानों तथा ग्रामीण हस्ताकारों की कृषि आवश्यक्ताओं को पूरा करेंगे।

बैंकिग आयोग ने यह पाया भारत जैसे विशाल देश में कोई एक प्रकार की वित्तीय संस्था ग्रामीण क्षेत्र की आवश्यक्ताओं को पूरा करने में असमर्थ थी इसलिए आयोग ने एक बहुविध कार्यक्रम की सिफारिश की जिसमें सहकारी ऋण समितियों, वाणिज्यिक बैंको, भारतीय स्टेट बैंक और प्रायोजित ग्रामीण बैंक को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी थी परंतु भारत सरकार ने 1975 तक देश में ग्रामीण बैंको की श्रंखला शुरू करने की बैंकिग सिफारिश पर कोई विचार नहीं किया। 1975 में देश के 5 चुनिंदा जिलों में 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शुरू किये गए।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) :– भारत सरकार एवं रिजर्व बैंक ने 1970 की शताब्दी के अंत में यह महसूस किया कि चूंकि सहकारी बैंकों, व्यापारिक बैंको तथा क्षेत्रीय में यह ग्रामीण बैंको के साथ प्रवाह में वृद्धि तो अवश्य हुई, लेकिन विभिन्न पहलुओं पर केन्द्रीय स्तर पर नियंत्रण की समस्या उत्पन्न हो गयी है, अतः देश में कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिये राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की मांग की जाने लगी। इसी मांग को ध्यान में रखते हुए मार्च 1979 में रिजर्व बैंक ने श्री बी. शिवरमन् की अध्यक्षता में कृषि तथा ग्रामीण विकास के लिये संस्थागत साख व्यवस्था पुनरीक्षण समिति गठित की। अतः इस कार्य हेतु राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की जानी चाहिये। समिति की सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकार किया गया। जिस पर अमल करते हुये दिसंबर 1981 कों संसद में एक विधेयक प्रस्तुत किय गया एवं जुलाई 1982 से इस संस्था ने विधिवत् अपनी कार्यप्रणाली आरंभ कर दी। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था है जो ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं अन्य क्रियाओं के लिये इनसे संबंधित अन्य कार्य करती है।

नाबार्ड की स्थापना का उद्देश्य :–

1. कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिये। संस्थागत साख की पूर्ति करना।
2. ग्रामीण क्षेत्र के कमजोर वर्गो को ग्रामीण साख का अधिकांश लाभ देना।
3. ग्रामीण साख में निरंतर प्रवाह बनाये रखना।
4. साख के क्षेत्र में क्षेत्रीय संतुलन पर नियंत्रण रखना।
5. संस्थागत ऋणों की वसूली स्थिति को सुधारना।
6. ग्रामीण साख की बहु–एजेंसी व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु विभिन्न संस्थाओं में समन्वयन स्थापित करना।

कृषि क्षेत्र में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों :– क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक में क्रषक की वित्तीय आवश्यक्ताओं को तीन वर्गों में बॉटा गया है। यह वर्गीकरण इस बात पर आधारित है, कि किसान को किस उद्धेश्य के लिये कितने समय के लिये ऋण की आवश्यक्ता है।

(क) कृषक को खेती–बाड़ी, घरेलू आवश्यताओं की पूर्ति के लिये 15 माह से भी कम समय के लिये धन की आवश्यक्ता पड़ती है। उदाहरणतः उसे बीज, उर्वरक और चारा आदि खरीदने के लिए धन की आवश्यक्ता होती हैं। जिस वर्ष फसल अच्छी न हुई हो उस वर्ष अपने परिवार का निर्वाह करने के लिये भी उसे धन की आवश्यक्ता हो सकती है। वे ऋण अल्पावधि ऋण होते हैं जो साधारणतः फसल काटने पर चुका दिए जाते है।

(ख) कृषक को अपनी भूमि में सुधार करने पशु खरीदने और कृषि उपकरण प्राप्त करने के लिए 15 महिने से लेकर 5 वर्ष तक के मध्यावधि ऋणों की भी आवश्यक्ता होती है। अल्पावधि ऋणों की तुलना में ये ऋण अधिक होते है। और उन्हें अपेक्षाकृत अधिक समय के बाद ही चुकाया जाता है।

(ग) कृषक को अतिरिक्त भूमि खरीदने, भूमि में स्थाई सुधार करने, ऋण अदा करने और मंहगे कृषि–यंत्र खरीदने के लिए आवश्यकता पड़ती है। ये ऋण 5 वर्ष से भी अधिक के लिये जाते है। कृषक इन ऋणों को अनेक वर्षो में थोड़ा –थोड़ा करके चुका पाता है। इन्हें दीर्घकालीन ऋण कहते है।

एक दृष्टि से हम किसानों की ऋण संबंधी आवश्यकताओं को दो वर्गो में बांट सकतें हैं –उत्पादक और अनुउत्पादक ऋण। उत्पादक ऋणों में ऐसे आधार

शामिल किए जाते हैं, जो किसानों को कृषि क्रियाओं में सहायता देते है या अपनी भूमि उन्नत करने सहायता देते हैं, जैसे बीज, खाद, औजार आदि क्रय करने के लिये ऋण सरकार को कर का भुगतान करने के लिये और भूमि पर स्थायी उन्नतियाँ करने जैसे कुँओं को खोदने एवं गहरा करने, बाड़ लगाने आदि।

अतः कृषि क्षेत्र में बैंकों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि किसान को कृषि कार्य के प्रत्येक चरण में धन की आवश्यकता होती है, बैंक भी कृषक के ऋण प्राप्त करने से लाभान्वित होते हैं इसलिए बैंकों का यह प्रयास होना चाहिए कि उनके द्वारा अधिक से अधिक कृषक लाभान्वित हों।

संदर्भ :–

- गुप्ता पी. के, कृषि अर्थशास्त्र, वृदां पब्लिकेशन्स प्रा.लि
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम,1976
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976
- बैंकिग उद्योग एवं विधान, रूक्मणि प्रकाशन वर्ष 2015
- पूरी बी. के , मिश्र एस. के. भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिकेशन हाउस

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भारत में ब्रिटिश काल के कला एवं स्थापत्य का अध्ययन

हरचन्दी अहिरवार
शोधार्थी (इतिहास), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

प्रत्येक युग में आवश्यकताओं के अनुसार स्थापत्य एवं कला की कल्पना की गई है। प्रत्येक स्तर इनके द्वारा प्रचलित दृष्टिकोणों का प्रत्युत्तर दिया गया है। निर्माण जैसे भी थे, जैसा कि प्रत्येक युग में स्थापत्य कला प्रस्तुत करती थी, जो कि उसके लोगों, उनकी आस्थाओं और आदर्शों की विशेषता थी, सभ्यता का उनका चरण उनके विश्वासों को प्रस्तुत करता था और साथ ही साथ विभिन्न बाहरी प्रभावों, स्तूपों, मंदिरों, महलों, किलों, मस्जिदों को समायोजित करता था, मीनार और मकबरे जो भारत के प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास के विभिन्न युगों में बड़ी संख्या में बनाए गए थे, उन समय के उद्देश्य को पूरा करते थे। फिर भी शाहजहाँ और अकबर आदि सम्राटों के काल ने कला और स्थापत्य में भव्यता देखी और भारतीय स्थापत्य कला में योगदान दिया।

अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के आगमन और अंततः फ्रांसीसियों पर अंग्रेजों के वर्चस्व के कारण अंग्रेजों द्वारा अनेक छावनी शहरों और बैरक के निर्माण पर आधारित स्थापत्य कला की स्थापना की गई, ताकि वे रियासतों पर नियंत्रण रख सकें। अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत, ब्रिटिश स्थापत्य कला को उन्मुख होने की आवश्यकता थी। यह सजावटी नहीं था और इसका स्थान सादगी ने लिया गया था, लेकिन वृहद आकार और ऊंचाई के कारण यह विस्मय का कारण भी बनी। इस प्रकार, ब्रिटिश काल की राजनीतिक स्थिरता ने स्थापत्य को प्रोत्साहित किया।

भव्य मुगल स्थापत्य कला के पश्चात्, भारत ने इंडो–यूरोपीय स्थापत्य कला की विरासत का विकास देखा, जो पुर्तगाल (पुर्तगाली), हॉलैंड (डच), फ्रांस (फ्रांसीसी) और अंत में अंग्रेजों द्वारा औपनिवेशिक आधिपत्य यूरोपीय देशों की शैलियों का समामेलन था। यूरोपियनों द्वारा किले, चर्च, टाउन हॉल, घंटाघर, बाजार परिसर और प्रवेश द्वार आदि निर्मित किए गए।

चर्चों और कैथेड्रल द्वारा चिह्नित अद्भुत पुर्तगाली स्थापत्य कला पुनर्जागरणकालीन यूरोपीय स्थापत्य को दर्शाती है। उदाहरण स्वरूप मुख्य रूप से 18 वीं शताब्दी इसवीं से प्रारम्भ हुए पुरानी हवेलियों, किलेबंदी और रक्षा प्रणाली के अवशेष। पुर्तगाली स्थापत्य कला उस समय यूरोप में समकालीन विकास से बहुत प्रभावित थी। गोवा के चर्च भी स्थानीय औपनिवेशिक अभिरुचि, मौद्रिक संसाधनों और कच्चे माल के अनुरूप पुनर्जागरण सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र के परिचायक है।

अंग्रेजों द्वारा निर्मित भवन मुगलों की तरह भव्य और आलीशान नहीं थे, बल्कि ये नागरिक और उपयोगितावादी आवश्यकताओं वाली इमारतें और स्मारक संरचनाएं थीं। ब्रिटिश काल के दौरान भारत में इंडो–यूरोपियन स्थापत्य ने अपने गृह देश के घटनाक्रमों को ही चित्रित किया, लेकिन भारत में तत्कालीन स्थापत्य कला से प्रेरित भी हुआ।

हालाँकि, भारत में ब्रिटिश इंडो–यूरोपियन स्थापत्य के विकास और प्रगति का अध्ययन कलकत्ता (अब कोलकाता), मद्रास (अब चेन्नई), बॉम्बे (मुंबई) और नई दिल्ली आदि शहरों से किया जा सकता है। अंग्रेजों के इस योगदान का परिणाम यह हुआ कि यूरोपीय, भारतीय और मुगल तत्वों से युक्त समग्र स्थापत्य कला रचित हुई और इसे औपनिवेशिक स्थापत्य कला भी कहा जाता था। भारत में ब्रिटिश शासन की सबसे महत्वपूर्ण विरासत में से एक, स्वतंत्रता संघर्ष अवधि से पूर्व दो शताब्दियों की औपनिवेशिक स्थापत्य कला है। ये प्रभावशाली भवन जिनमें महलों, हवेलियों, क्लबों और सरकारी आधिकारिक इमारतों का समावेश था, पश्चिमी और पूर्वी संवेदनाओं के मिश्रण का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि उनके वास्तुकार ने विदेशी संस्कृति में ब्रिटिश प्रभुत्व की पताका लहराने की मांग भी की थी। यदि हम जयपुर, बीकानेर और मैसूर जैसे नवीन रियासतों वाले नगरों को देखें तो वे भी भारत–यूरोपीय वास्तुकला से प्रभावित हैं।

वास्तव में, जब अंग्रेजों ने विभिन्न स्थानों जैसे कलकत्ता, बम्बई और मद्रास आदि में अपनी बस्तियाँ स्थापित कीं, तो उन्हें अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की सुविधा के लिए यूरोपीय शैली के घरों का निर्माण करना पड़ा। जैसे–जैसे निवासियों की संख्या बढ़ी, उन्होंने अधिक स्थायी संरचनाओं का निर्माण प्रारम्भ

किया, जैसे मजबूत किले और चर्चों की स्थापना। प्रारम्भिक अवस्था में चर्च, ब्रिटेन के गाँवों में स्थित चर्चों के समान दिखते थे, अंग्रेज अधिकारियों ने निजी आवास भी बनाए, जो काफी विशिष्ट थे।

ब्रिटिश साम्राज्य के उदय के पश्चात् ही एक प्रकार की विक्टोरियन वास्तुकला का विकास सम्भव हुआ। हालांकि रोचक तथ्य यह है कि विक्टोरियन शैली मूल न होकर बजाय अनुकरणीय शैली थी। विक्टोरियन शैली की इमारतों की मुख्य विशेषता यह थी कि इसकी गुंबददार छतें ईंटों एवं लोहे के स्तम्भों पर स्थित थीं। इस प्रकार, भारत में 19 वीं शताब्दी की इमारतों की अंग्रेजी शैली ने अतीत के स्थापत्य की भव्यता से स्वयं को पृथक रखा। प्रमुख विक्टोरियन शैली की इमारतों में यह देखा जा सकता है, जैसे, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास आदि के चर्च।

कस्बों का स्वरूप ब्रिटिश शैली का ही था जिसमें घंटाघर, रेलवे स्टेशन, सार्वजनिक आधिकारिक भवन, असेंबली हॉल और सार्वजनिक अस्पताल आदि शामिल थे।

औपनिवेशिक भारत में अनेक नए, तथाकथित औपनिवेशिक महानगर स्थापित किए गए थे। इन नए शहरों या कस्बों में पश्चिमी प्रौद्योगिकी और नए विचारों को ब्रिटिश राजनीतिक शक्ति और तकनीकी विकास के प्रसार के साथ लागू किया गया, जिससे आधुनिकीकरण की पश्चिमी अवधारणा विकसित हुई।

जब अंग्रेज भारत से गए तो भाषा एवं सामाजिक रीति–रिवाजों की विरासत के अलावा उनके प्रशासनिक कामकाज के तरीके अनेक संदर्भों में यथावत रहे, साथ ही, उनकी इमारतें एवं भवन निर्माण प्रणाली का विस्तार समस्त देश में हुआ। ब्रिटिश भारत में अनेक निर्माण गैर–व्यवसायिक एवं सैन्य इंजीनियरों द्वारा किए गए थे, उनके काम में स्थानीय सामग्री और जलवायु के लिए अनुकूल होने का भाव प्रदर्शित होता है, जो घर से लंबे समय तक दूर रहने वाले उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लोगों द्वारा यूरोपीय शैलियों में व्यक्त किया जाता है।

संदर्भ :–

- P.N. Chopra, and P. Chopra, Monuments of the Raj: British Buildings in India, Pakistan, Bangladesh, Sri Lanka and Myanmar, New Delhi, 1999, p. ix.
- Tillotson Sarah, Indian Mansions: A Social History of the Haveli, New Delhi, 1998, p. 9.
- http//www.heritageinindia.com/architectural-heritage/indo-european.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

सागर नर्मदा क्षेत्र की प्रशासनिक व्यवस्था

मेघा राठौर
शोधार्थी (इतिहास), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

वर्ष 1834 में, उत्तर–पश्चिमी प्रांतों द्वारा प्रशासन के सुचारू संचालन हेतु बैतूल, होशंगाबाद और नरसिंहपुर जिलों को एक कर दिया गया। 1843 में वे पूर्व के समान ही पुनः 3 जिलों में अलग हो गए। सागार–नर्मदा प्रदेश में सागर, दमोह, जबलपुर और नरसिंहपुर का वर्तमान जिला शामिल है। तृतीय ब्रिटिश–मराठा युद्ध की समाप्ति के पश्चात् यह मराठों से कब्जा कर लिया गया था। 1861 में, सागार–नर्मदा प्रदेश को मध्य प्रांत बनाने के लिए नागपुर संभाग के साथ जोड़ा गया था। सागर–नर्मदा क्षेत्र बाद में मध्य प्रांत (बाद में मध्य प्रांत और बरार) का हिस्सा बन गया और सागर जिले को जबलपुर संभाग में जोड़ा गया।

1720 और 1760 के मध्य मराठा एवं नागपुर के भोंसले इस क्षेत्र पर हावी थे। अंग्रेज अपने प्रभुत्व का विस्तार कर रहे थे। तीसरे ब्रिटिश –मराठा युद्ध ने भारत में ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित कर दिया यह क्षेत्र एक ब्रिटिश प्रांत बन गया, जिसे सागर नर्मदा क्षेत्र नाम दिया गया। यहाँ जबलपुर, सागर, दमोह, छिंदवाड़ा, सिवनी, बालाघाट, मण्डला, होशंगाबाद, खण्डवा, बैतूल, और नरसिंहपुर के वर्तमान जिले शामिल थे। क्षेत्र का सैन्य मुख्यालय जबलपुर को बनाया गया।

प्रदेश में समृद्ध एवं वृहत् उपजाऊ कृषि क्षेत्र तथा प्रचुर प्राकृतिक संसाधन व बहुमूल्य वनोपजों से परिपूर्ण विशाल वनक्षेत्र है। यदि इन संसाधनों का समुचित उपयोग किया जाए तो प्रदेश एक कृषि आधारित औद्योगिक एवं सम्पन्न राज्य के रूप में प्रतिष्ठित होगा, किंतु उपलब्ध संसाधनों की तुलना में प्रदेश में कृषि आधारित उद्योगों का विकास पर्याप्त नहीं हुआ है।

राजस्व और न्यायिक प्रशासन के उद्देश्य से इस क्षेत्र को छोटे जिलों में विभाजित किया गया था। बर्ड की सिफारिश पर 1835 में इन जिलों की संख्या कम कर दी गयी। नरसिंहपुर, होशंगाबाद और बैतूल जिलों को एक कर इसका मुख्यालय होशंगाबाद बनाया गया। जिलाधिकारी को पहले सुपरिन्टेनडेण्ट कहा गया और बाद में उसक पदनाम बदलकर प्रिंसिपल असिस्टेन्ट कमिश्नर और फिर डिप्टी कमिश्नर कर दिया गया। जिले को परगनों (तहसीलों) में विभाजित कर एक–एक तहसीलदार के अंतर्गत रख दिया गया। जिलाधिकारी को पुलिस के कार्यों का प्रभार भी दिया गया, जिसमें उसकी सहायता तहसीलदार, गाँव के पटेल और चौकीदार करते थे। शहर की पुलिस का प्रभारी कोतवाल होता था। विशेष परिस्थितियों में जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ चौकियाँ बनाईं जाती थीं। जिलाधिकारियों को दंडाधिकारी के रूप में दो वर्ष तक की सज़ा देने का अधिकार था। जनसंख्या शांतिप्रिय थी और उस पर व्यवस्था लागू करना आसान था। आश्चर्य की बात यह है कि लोग आदतन हथियार लेकर नहीं चलते थे, जबकि अन्य स्थानों पर यह देखा गया था कि मुसाफिर अपनी हिफाजत के लिए हथियार लेकर चलते थे।

इन क्षेत्रों का न्यायिक प्रशासन कमिश्नर के हाथ में था, जिसके मातहत प्रिंसिपल और जूनियर असिस्टेंट थे। इन अधिकारियों द्वारा दीवानी न्याय का प्रशासन सुप्रीम गवर्नमेंट द्वारा जारी दिशानिर्देशों के अनुसार किया जाता था और अंतिम अपील सदर दीवानी अदालत में होती थी। आपराधिक मामलों में वे सदर निज़ामत अदालत के अधीन थे। बहरहाल ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशासनिक व्यवस्था संतोषजनक नहीं थी। इसे उत्तर–पश्चिमी प्रांतों के सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यु के सदस्य श्री आर.एम. बर्ड द्वारा की गई टिप्पणी से समझा जा सकता है। उसने 1834 में लिखा कि इन क्षेत्रों में प्रशासन में कोई सामान्य एकरूपता नहीं है, ''प्रत्येक जिले का प्रशासन वहाँ के प्रभारी अधिकारी की मनमर्जी से चलता है। पूरा क्षेत्र सिर्फ कमिश्नर के स्वविवेक पर निर्भर है।'' ''सागर प्रॉविन्सेज के प्रशासन की मूल भावना निर्धारित बुनियादी सिद्धांतों के खिलाफ रही है'' जिनका पालन किए बिना नागरिक और सामाजिक समृद्धि असम्भव है। सम्पत्ति के उपयोग तथा नियोजन में पूरी स्वतंत्रता और सुरक्षा, समान कानून का कड़ा प्रशासन और जहाँ तक सरकार का सम्बंध है, प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम का फल दिलाना, अपरिहार्य रूप से आवश्यक है। सागर प्रॉविन्स की व्यवस्था इन सिद्धांतों के एकदम विपरीत है।

एक वरिष्ठ लोक सेवक की उपरोक्त टिप्पणियों

से यह एकदम स्पष्ट होता है कि कम्पनी शासन के अंतर्गत इस अंचल में न्यायिक व्यवस्था में कुछ गंभीर खामियाँ थी। संपूर्ण दीवानी और आपराधिक कानूनों का अभाव इस व्यवस्था की एक बड़ी खामी थी क्योंकि संहिताबद्ध कानून के बिना निष्पक्ष न्याय संभव नहीं था। कानून के लिखित और निर्धारित सिद्धांतों के अभाव में एक ही अपराध के लिए दो न्यायाधीश अलग–अलग निर्णय दे सकते थे। न्यायिक अधिकारी को इस बात की निश्चिंतता नहीं होती थी कि उसके द्वारा कही हुई बात की उच्चतर न्यायालय सही व्याख्या करेंगे अथवा नहीं। इसके अलावा उन्हें इस देश के कानून, प्रथाओं तथा लोगों के आचरण की जानकारी नहीं थी। अतः वे समुचित न्याय प्रदान करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके।

बर्ड ने उदार शर्तों पर बीस–साला बंदोबस्त की सिफारिश की। गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ने बीस–साला बंदोबस्त किये जाने के लिए आदेश पारित किया, जो 1834 और 1838 के बीच किया गया। हमने देखा है कि यह बंदोबस्त भी अच्छा नहीं पाया गया। इससे कुछ जिलों को राहत मिली, जहां आँकलन कम कर दिया गया, जबकि अन्य जिलों में इससे कोई राहत नहीं मिली, क्योंकि आँकलन की विधि इसमें भी संक्षिप्त थी और इसके लिए कोई समुचित सर्वेक्षण नहीं किया गया। बंदोबस्त अधिकारियों का मुख्य आधार क्षेत्रों, वहां की फसलों तथा कीमतों आदि की नजरी आँकलन ही था। उस समय प्रचलित, परिसम्पत्ति को 66 प्रतिशत के आधार पर निर्धारित दर बहुत ज्यादा थी और इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था नष्ट हुई। इससे किसानों पर भारी बोझ पड़ा, जो भू–राजस्व का भुगतान आसानी से नहीं कर सकते थे। फलस्वरूप अनेक जिलों में आँकलनों को और कम किया गया, विशेषकर सागर, दमोह तथा सिवनी जिलों में। हालाँकि बंदोबस्त कम दरों पर पटेलों के साथ किया गया लेकिन स्वामित्व अधिकार के बारे में कुछ नहीं कहा गया, पटेलों को रैयत के साथ अपनी खुद की व्यवस्था करने की स्वतंत्रता दी गई लेकिन उन्हें हर व्यक्ति द्वारा साल भर के भुगतान की वार्षिक जमाबंदी करनी पड़ती थी और इसके बाद कोई माँग नहीं करने दी जाती थी।

अत्यधिक राजस्व आँकलन थोपने के अलावा, ब्रिटिश प्रशासन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी चौपट कर दिया। मराठा शासनकाल में राजस्व का भुगतान नकद किया जाता था, लेकिन गरीब किसान वस्तु रूप में भी भुगतान कर सकते थे। गांव में विनिमय का माध्यम अनाज था। जब फिरंगी सरकार ने कब्जा कर लिया, तब राजस्व की मांग नकद की जाने लगी और इस बात का पता नहीं लगाया गया कि इस प्रकार अचानक परिवर्तन से उत्पन्न आवश्यकता के अनुरूप सिक्के चलन में हैं भी या नहीं। किसानों के उत्पादों के पैसे के रूप में मूल्य में तत्काल कमी आ गयी। 'रैयत को नकद मांग पूरी करने के लिए अपने उत्पाद का भाग बेचने को मजबूर किया जाता था और उसके पास बेचने का सिर्फ एक ही रास्ता था। उसे मवेशी अथवा अनाज के बजाय पैसे के रूप में ही धन का विचार करना पड़ा। पैसा एक ऐसा माध्यम था जिसके बारे में उसे कम ही पता था। फलस्वरूप पूरा राजस्व चुकाना और अपनी स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति करना उसके लिए संभव नहीं था। किसान बकायदार हो गये और उन्हें दीवानी मुकदमों की लंबी प्रक्रिया से गुजरना पड़ा। काश्तों तथा अधिकारों का विस्तृत अभिलेख सरकार के एक छोटे अधिकारी के पास रखे जाते थे। इस प्रकार किसानों के पास कोई अधिकार नहीं थे और उन्हें बहुत अल्प वेतनभोगी, अभिलेख संधारण करने वाले ग्रामीण अधिकारी का असहाय शिकार बना दिया गया। वह अपने कम वेतन की भरपाई सभी तरह के भ्रष्टाचार और धोखेबाजी से करता था।

उपरोक्त स्थिति से स्पष्ट होता है कि सागर और नर्मदा क्षेत्रों में भूमि स्वामियों को जबर्दस्ती दुर्दशा में धकेला गया। ब्रिटिश शासनकाल में अनेक तालुकेदारों, ठाकुरों तथा जमींदारों के विरूद्ध कानून का इतनी ज्यादा सख्ती से पालन किया गया कि वे अपनी जमीनों से बेदखल हो गये।

संदर्भ :–

- Bird R.M., Note on the Saugar and Nerbudda Territories, 1834, p. 5
- सागर नर्मदा क्षेत्र के समस्त जिलों के गजेटियर
- जनगणना प्रतिवेदन, 1891
- ए.के. पाण्डेय, मध्यप्रदेश : सामान्य अध्ययन, म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2008.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

पंचायती राज व्यवस्था में मुस्लिम समुदाय की राजनीतिक स्थिति एवं राजनीतिक नेतृत्व का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (सिवनी जिले के विशेष संदर्भ में)

दुर्गा प्रसाद गुप्ता
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म. प्र.)

प्रस्तावना :– भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है। लोकतांत्रिक पद्धति का मूल आधार सत्ता का विकेन्द्रीकरण है, अर्थात् लोकतंत्र उस अवस्था में ही सफल होगा जब देश के हर वर्ग एवं व्यक्ति को शासन में भागीदारी प्राप्त हो। देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास भी उसी स्थिति में पूर्ण माना जाएगा, जब सम्पूर्ण देश विकास की प्रक्रिया में भाग ले। विशेषकर समाज के कमजोर, उपेक्षित एवं निम्न वर्ग की शासन में भागीदारी आवश्यक है।

भारतीय लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का मूल आधार पंचायत राज व्यवस्था रही है। सभ्य समाज की स्थापना के बाद से ही मनुष्य ने जब समूहों में रहना सीखा पंचायत के आदर्श एवं मूल सिद्धांत उसकी चेतना में विकसित होते आये है। लेकिन पूरे देश में प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करके बुनियादी स्तर पर पंचायत राज की स्थापना और जनता के हाथों में सीधे अधिकार देने की शुरुआत संविधान के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से संभव हुई है।

पंचायती राज व्यवस्था भारतीय समाज की एक सांस्कृतिक विशेषता है। ग्रामीण समाज को संगठित रखने, ग्रामीण समाज में व्यवस्था और नियंत्रण सीमित करने मे पंचायतो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

पंचायती राज एंव ग्राम स्वराज संशोधन अधिनियम 2001 लागू किया गया। इस प्रकार महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज का सपना साकार हुआ।

पंचायती राज व्यवस्था के द्वारा नेतृत्व के स्तर को सत्ता के विकेन्द्रीयकरण की दिशा में जिला सरकार की स्थापना एंव गांव का समग्र विकास सुनिश्चित करनें के लिए–मध्यप्रदेश देश का पहला राज्य है, जहॉ 73 वें संविधान संशोधन के प्श्चात् पंचायत के चुनाव करायें गयें।

उद्देश्य :– मुस्लिम समुदाय की राजनैतिक नेतृत्व एवं राजनैतिक स्थिति का अध्ययन करना।

शोध विधि :–

अध्ययन क्षेत्र :– अध्ययन क्षेत्र के लिए मध्यप्रदेश के सिवनी जिले का चयन किया गया है।

अध्ययन का समग्र :– मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के मुस्लिम परिवारों को अध्ययन के समग्र के रुप में लिया गया है।

अध्ययन की इकाई :– सिवनी जिले के निवासरत् एक मुस्लिम उत्तरदाता परिवार को लिया गया है।

निदर्शन विधि :– शोध कार्य के अंतर्गत शोध की प्रकृति उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के द्वारा सिवनी जिले का चयन किया गया। जिसमें सिवनी जिले की 60 मुस्लिम परिवारों का चयन किया गया है।

समंक संकलन की विधि :–

प्राथमिक समंकों का संकलन :– साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन, समूहचर्चा।

द्वितीयक समंकों का संकलन :– पत्र–पत्रिकाएँ, सरकारी अभिलेख, जनगणना पुस्तिका।

आकड़ों का विश्लेषण :– मुस्लिम समुदाय की राजनैतिक नेतृत्व एवं राजनैतिक स्थिति को तालिका में स्पष्ट किया गया है।

तालिका क्र. 01
पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से मुस्लिम उत्तरदाता को सत्ता में प्रतिनिधित्व करने संबंधी विवरण

क्र.	विवरण	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	सरपंच पद पर	24	40.0
2.	पंच पद पर	22	36.7
3.	उपसरपंच पद पर	14	23.3
कुल योग		**60**	**100.0**

उपरोक्त तालिका के समंको से स्पष्ट होता हैं कि अध्ययन हेतु चयनित मुस्लिम उत्तरदाताओं में 40.0 प्रतिशत का कहना हैं कि पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से वह सरपंच पद पर प्रतिनिधित्व कर रहे हैं तथा 36.7 प्रतिशत का कहना हैं कि वह पंच पद पर प्रतिनिधित्व कर रहे हैं एवं 23.3 प्रतिशत मुस्लिम उत्तरदाताओं का कहना है कि उपसरपंच पद पर प्रतिनिधित्व कर रहे है। अतः तालिका से स्पष्ट हैं कि राजनीति में कार्य करने वाले मुस्लिम उत्तरदाता जो की सरपंच पद पर कार्य कर रहे है का प्रतिशत सर्वाधिक हैं।

तालिका क्र. 02
पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से मुस्लिम उत्तरदाता द्वारा नेतृत्व करने संबंधी

क्र.	विवरण	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	सामाजिक	15	25.0
2.	राजनैतिक	27	45.0
3.	सांस्कृतिक	10	16.6
4.	अन्य	08	13.4
कुल योग		**60**	**100.0**

उपरोक्त तालिका के समंको से स्पष्ट है कि 25. 0 प्रतिशत मुस्लिम उत्तरदाता द्वारा सामाजिक नेतृत्व किया जा रहा है, 45.0 प्रतिशत द्वारा राजनैतिक नेतृत्व, 16.6 प्रतिशत द्वारा सांस्कृतिक नेतृत्व एवं 13.4 प्रतिशत द्वारा अन्य कार्य में नेतृत्व कर रहे है।

निष्कर्ष :– पंचायती राज व्यवस्था में मुस्लिम समुदाय की राजनीतिक स्थिति एवं राजनीतिक नेतृत्व में प्रतिनिधित्व कर रहे है।

सुझाव :–

1. मुस्लिम समुदाय के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सरकार द्वारा प्रयत्न किये जाने चाहिए, जिससे इनका पिछड़ापन समाप्त हो सके।
2. मीडिया का उपयोग कर मुस्लिम समुदाय में राजनीतिक अभिरूचि और अभिप्रेरणाओं को विकसित किया जा सकता है।
3. मुस्लिम समुदाय में आत्मविश्वास उत्पन्न कर राजनीतिक में उनकी सहभागिता में सुधार किया जा सकता है।
4. मुस्लिम समुदाय में नेतृत्व के गुणों का विकास होना आवश्यक है जिसके माध्यम से राजनेता के रूप में वे जनता का प्रतिनिधित्व कर सकेंगे।
5. मुस्लिम समुदाय को ग्रामीण क्षेत्र में राजनीतिक पद ग्रहण करने के पश्चात उनके पद संबंधी उनके ज्ञान को विकसित करने के लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. श्रीवास्तव एन. के (1989), ''भारत में पंचायतीराज'', निधि पब्लिकेशन,नई दिल्ली।
2. मिश्रा, नंदलाल (2001), ''नयी पंचायती राज व्यवस्था और ग्रामीण विकास'', बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा।
3. मुखर्जी, रविन्द्रनाथ (1999),''सामाजिक शोध व सांख्यिकी'' विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली,।
4. गुहा, सम्पा (2004) ''बदलते समाज में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता'', पीयुश पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. चौधरी,डी.एस. (योजना,मार्च 2008), ''पंचायतीराज सिस्टम इन इंडिया'', ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

21 वीं सदी में भारत की व्यावसायिक/वाणिज्यिक चुनौतियां

डॉ. बालकृष्ण चौहान
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय महाविद्यालय, सैलाना

पीएच.डी. शोध प्रबंध :– ''पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र का ग्रामीण समाज पर संरचनात्मक एवं संस्थात्मक प्रभाव'' के संदर्भ में।

21 वीं सदी में भारत की व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक चुनौतियों के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा अपने पीएच.डी. शोध प्रबंध ''पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र का ग्रामीण समाज पर संरचनात्मक एवं संस्थात्मक प्रभाव'' के माध्यम से अध्ययन किया गया। प्रस्तुत शोध–पत्र, शोध ग्रंथ से प्राप्त तथ्यों, आंकड़ो एवं निष्कर्षों पर आधारित है।

21 वीं सदी में भारत की व्यावसायिक वाणिज्यिक चुनौतियों के सापेक्ष हम देखते हैं तो पाते है कि 80 के दशक में भारत की औद्योगिक/व्यावसायिक स्थिति कोई खास अच्छी नहीं थी। तत्कालीन अर्जुनसिंह सरकार ने इन व्यावसायिक/वाणिज्य चुनौतियों से निपटने के लिए कुछ ऐसे ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों का चुनाव किया, जहां पर व्यावसायिक गतिविधियों को प्रारंभ कर 21 वीं सदी में विश्व के साथ कदम से कदम मिलाकर चला जा सके।

इसके लिए इंदौर के पास महू के करीब एक क्षेत्र ''पीथमपुर'' का चयन किया गया। यहां पर तत्कालीन सरकार अमरीका के डेट्रायट शहर की तर्ज पर ऑटो मोबाईल क्लस्टर का निर्माण करना चाहती थी। इसके लिए सरकार ने उद्योगपतियों को आमंत्रित किया एवं न्यूनतम दामों पर विशाल भू–भाग वितरित किए। बिजली के लिए कुछ प्लांटो ने अपने नीजि संयंत्र भी कायम किए। आज चार दशक बाद पीथमपुर, बगदून, सांगौर और यहां तक की घाटा–बिल्लौद तक का इलाका कारखानों की चिमनियों से आबाद नजर आता है।

यह स्पष्ट है कि वैश्विक बाजार का विस्तार होन तथा व्यापार व वाणिज्य पर लगे संरक्षणात्मक अवरोधों के हटने से, भारतीय अर्थव्यवस्था के भावी विकास पर अत्यधिक असर पड़ रहा है। हालांकि इनसे व्यापारिक अवसरों में वृद्धि होगी, किंतु भारतीय उद्योगों को मिल रहे संरक्षणात्मक लाभों में कमी आएगी, जिनका की इनके विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। घरेलू ओर विश्व बाजार दोनो जगहों पर भारत की योग्यता इस बात पर निर्भर करेगी कि अन्य देशों की तुलना में यहां कितनी प्रतिस्पर्धात्मक सबलता है। पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र इस प्रतिस्पर्धात्मकता को बखूबी निभा रहा हे। यहां के बड़े उद्योग जैसे 'आयसर', बजाज टेम्पों अपना झण्डा बुलंद किए हुए है।

21 वीं सदी में भारत को व्यावसायिक/वाणिज्यिक चुनौतियों का सामना करने हेतु नीति–निर्धारण का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र सामाजिक–आधारभूत ढाँचे का निर्माण करना है। विश्व के प्रतिस्पर्धात्मक दबावों का मुकाबला करने की हमारी क्षमता इस बात पर निर्भर है कि मानवीय पूँजी की उत्पादक कुशलता को कहाँ तक बढ़ा पाते हैं। स्थायी आर्थिक संवृद्धि का संबंध श्रम–शक्ति की उत्पादक कुशलता से जुड़ा है। श्रम–शक्ति, उत्पादक कुशलता, पर्याप्त पोषाहार, स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल–निर्माण व अन्य मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं से प्रभावित होती है। दुनिया की कई सफल कहानियों में भौतिक व मानवीय पूँजी में उच्च निवेश किए जाने की बात प्रदर्शित होती है। पिछले अनेक वर्षों के विकास प्रयासों के दौरान भारत में जीवन की सामान्य गुणवत्ता उन्नत हुई है। पीथमपुर, बगदून (छोटे एवं बड़े बगदून) एवं सागौर क्षेत्र को देखकर यह सिद्ध होता है। चार दशक पहले जो बंजर जमीन पड़ी थी, आज वो भारत के हृदय की सोने की टकसाल बना हुआ है। यहां के स्थानीय निवासी को आज वह हर सुविधा जैसे उत्पादक–कुशलता, पर्याप्त पोषाहार, स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल, निर्माण व अन्य मूलभूत मानवीय आवश्यकताएं सरकारी तौर पर एवं कंपनियों द्वारा नीजि रूप से उपलब्ध है।

लेकिन यदि हम वैश्विक प्रतिस्पर्धा में टिके रहना चाहते है तो इस ओर, और अधिक ध्यान देने की जरूरत है। भारत ने सैकड़ों वर्षो के इतिहास को पार कर इतिहास के विभिन्न चरणों पर अनेक कठिन चुनौतियों का मुकाबला किया है और अनेक उपलब्धियां भी प्राप्त की है। भारत में सुदृढ औद्योगिक आधार, उच्च शिक्षित व तकनीकी – कौशल कर्मी, उन्नत प्रौद्योगिकीय क्षमता, उद्यमी कौशल तथा कानून के शासन सहित

परिपक्व लोकतंत्र विद्यमान है। 21 वीं सदी में प्रबंध की चुनौतियां,प्रौद्योगिकी, संगठनात्मक पुनर्संरचना, कौशल विकास और सार्वजनिक नीति के क्षेत्र में है। हालांकि पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र और भारत की इन चुनौतियों के समक्ष वर्तमान स्थिति मजबूत है, किंतु 21 वीं सदी की व्यावसायिक/वाणिज्यिक चुनौतियों का विश्वासपूर्वक सामना करने हेतु इन्हें और सुदृढ़ करने की जरूरत है। खुली विश्व व्यवस्था में प्रतिस्पर्धात्मक सबलता का सापेक्षिक महत्व होता है। भारत के पास कौशल है और यह प्रौद्योगिकी, उद्योग व सेवा के क्षेत्र में नए अवसरों का अधिकतम लाभ उठा सकता है। पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र इसी दिशा में निरंतर आगे बढ़ रहा है।

सरकारी नीति–प्राथमिकता की दृष्टि से व्यावसायिक/वाणिज्यिक चुनौती का सामना भौतिक आधारभूत संरचना में निवेश बढ़ा कर किया जा सकता है। शक्ति, परिवहन और संचार को उन्नत बनाए बिना दीर्घकालीन प्रतिस्पर्धात्मक सबलता प्राप्त करने की बात सोचना अर्थहीन है। इसके लिए नीजि और सार्वजनिक दोनों प्रकार के निवेश की आवश्यकता है। समूचे विश्व में आधारभूत संरचना के देशों में इसके सार्वजनिक क्षेत्र से अधिक निजी क्षेत्र को शामिल करना अब समय की मांग है। वर्तमान मध्यप्रदेश सरकार इस दिशा में प्रयासरत है। मुख्यमंत्री कमलनाथ के दावोस दौरे और अन्य निजी उद्यमियों को प्रदेश में निवेश करने की नीति पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र को निश्चित ही बहुत बड़ा संबल देगी।

भारतीय खासकर पीथमपुर के व्यावसायिक प्रबंधकों के समक्ष एक और चुनौती यह है कि उन्हें संरक्षणात्मक छाते से बाहर निकलकर खुले व्यापार के लिए तैयार होना है। वैश्विक व्यापार समझौते के अंतर्गत प्रशुल्क दरों को और घटाया जाना है और इसे अंतराष्ट्रीय स्तर पर लाया जाना है। इसके लिए भारतीय उद्योग को लोचशीलता दिखानी होगी। अपने परिचालनों में विविधता लाना होगी ताकि वे प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त प्राप्त कर सकें। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए फर्मों को अपनी आंतरिक सबलता का निर्माण करना है। इसके लिए उन्हें नियोजन में दीर्घकालीन दृष्टि को समावेशित करना तथा बाजार में अपनी अनूठी सुदृढ़ता का विकास करना होगा। खुली विश्व अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धात्मक और कुशलता को प्रोत्साहित करने वाली सार्वजनिक नीतियों को प्राथमिकता देनी होगी। यहाँ पर सरकार की भूमिका विश्वास उत्पन्न करने वाली एजेंसी के रूप में उभरती है। एक तो उन नीतियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जो निवेशकों एवं बचतकर्ताओं की अनिश्चित्ता व जोखिम को घटाती हो। इस दृष्टि से वित्तीय क्षेत्र की सुरक्षा के लिए अर्थव्यवस्था में आंतरिक व बाह्य स्थायित्व को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था का समष्टिगत अर्थशास्त्रीय आधार सुदृढ़ है। यह निम्न मुद्रास्फीति दर, भुगतान–संतुलन के चालू खाते में कम होते घाटे की स्थिति, वित्तीय क्षेत्र में विश्वसनीय मानदण्ड़ों का होना आदि तथ्यों में प्रदर्शित होती है। इन मूलाधारों का अधिक एकीकृत हो रही विश्व अर्थव्यवस्था में अत्यधिक महत्व है।

पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र उपरोक्त मानदण्ड़ों पर खरा उतरता है। शोध प्रबंध में यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यह क्षेत्र उद्योगों के क्षेत्र सहित 21 वीं सदी की व्यावसायिक व वाणिज्यिक चुनौतियों का सामना बखूबी करने की कुव्वत रखता है।

''पेशेवरशीलता'' की भी चुनौती के रूप में अनदेखी नहीं की जा सकती। प्रतिस्पर्धा की प्रकृति ऐसी होती है कि यह दुर्बल को सबल से अलग करती है। खुली विश्व अर्थव्यवस्था में इस बात का महत्व अत्यधिक है। पश्चिमी राष्ट्रों को वैश्विक–प्रतिस्पर्धा में सर्वाधिक बढ़त पेशेवर मानदण्ड के क्षेत्र में प्राप्त है– चाहे ग्राहकों या दावेदारों से व्यवहार करने का मामला हो अथवा गुणवत्ता प्रमापों व व्यावसायिक प्रभावशीलता का मामला हो। वे इसमें बहुत आगे है। पेशेवरशीलता का निर्माण दो तत्वों से होता हैः व्यक्तिवादी लक्ष्यों जैसे मूल्यों के प्रति आदर तथा परस्पर भरोसा और एक समूह या फर्म की संगठनात्मक प्रभावशीलता, जो इन वैयक्तिक विशेषताओं का सामूहिक रूप से उपयोग करती है।

उपरोक्त सभी गुण व विशेषताएं हमारे शोध कार्य के दौरान पीथमपुर औद्योगिक समूह में मुझे देखने को मिली। यही कारण है कि अपनी स्थापना के चार दशक बाद भी कुछ झंझावातों को झेलने के उपरांत भी यह क्षेत्र डेट्रायट का आभासे देता है। पीथमपुर, बगदून व सागौर के क्षेत्र ही इससे प्रकाशित नहीं हैं बल्कि इसका उजाला दूर–दूर तक फैला हुआ है और 21 वीं सदी में भारत की प्रमुख व्यावसायिक/वाणिज्यिक चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर रहा है।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भारत में जाति एवं राजनैतिक समीकरण की भूमिका

डॉ. डी.के. सिंह, निर्देशक
के.आर.जी. स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
कैलाश कुमार चन्द्रा, शोधार्थी

इक्कीसवीं सदी अर्थात् नई सहस्त्राब्दी के प्रवेश द्वार पर प्रवेशित मानव अनेक चुनौतियों एवं सम्भावनाओं के साथ उहापोह की स्थिति में चिंतन एवं मनन में है कि आगे क्या होगा? मानव मन का चिंतित होना भी लाजिमी है क्योंकि पिछली सदियों की भांति यह शताब्दी सामान्य नहीं है। तेजगति में तब्दील वैश्विक स्थितियॉ नित नया खेल खेल रही हैं। जहॉ एक ओर औद्योगिक युग के राष्ट्रीय पूंजीवाद एवं औपनिवेशिक पूंजीवाद एकाएक छलांग लगाकर अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादन, प्रजातंत्र और कल्याणकारी राज्य के सपने धरासायी हो चुके हैं। समाजवाद का सपना ध्वस्त हो चुका है और वर्तमान पीढ़ी के लिए उसकी स्मृतियाँ मानव मन में एक टीस की तरह जीवंत एवं सक्रिय हैं। हकीकत यह है कि पूंजीवादी औद्योगिक व्यवस्था जिस ज्ञानोदय, नवजागरण एवं फ्रांसीसी क्रांति के समानता, स्वतंत्रता एवं भ्रातत्व जैसे नारों से पैदा हुए थे, वे कब के दफन हो चुके हैं और पूंजीवाद का शोषक रूपी घिनौना चेहरा जो अक्सर लाभ और लोभ की प्रवृत्ति से ग्रसित होता है, वर्तमान में हमारी सम्पूर्ण मानवता का मुँह चिढ़ा रहा है। आधुनिकता द्वारा सृजित अधिकतर संरचनाएं जो सम्पूर्ण सृष्टि की व्याख्या अपने मापदण्डों के अनुसार करती थीं, वह अब अतीत की दास्तान सी हो गयी है।

यह एक उपलब्धि ही है कि विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश होने के साथ–साथ भारतीय जनमानस को, लोकतांत्रिक निर्वाचनों का गहन, व्यापक एवं लम्बा अनुभव रहा है। लेकिन पिछले कुछ समय से भारत में चुनावी राजनीति ऐसे दौर से गुजर रही है जहाँ चुनाव के अध्ययन देश की समग्र राजनीति को समझने के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं। आज देश में चुनाव के सम्बन्ध में परम्परागत रणनीतियों और शैलियों में निरन्तरता के साथ–साथ परिवर्तन के संकेत भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जहाँ एक ओर भारतीय मतदाताओं की राजनीतिक चेतना में अभिवृद्धि हुई है, वहीं चुनावों में धर्म, जाति, क्षेत्रीयता आदि परा–राजनैतिक कारक भी अपने प्रभाव को बनाए हुए हैं। इस दृष्टि से चुनावी राजनीति का अध्ययन प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है।

जाति भारतीय राजनीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्यता है। जाति की अवधारणा को ध्यान में न रखकर किया गया भारतीय राजनीति का अध्ययन अपूर्ण सिद्ध होगा। जाति एक वंशानुगत सगोत्रीय और सामान्यतः स्थलीय समूह है जिसका एक विशिष्ट व्यवसाय से पारस्परिक सम्बन्ध होता है। जातियों के स्थलीय पदसोपान में जिसका एक निश्चित स्थान होता है। एक विशिष्ट जाति में व्यक्ति का मात्र जन्म ही नहीं होता बल्कि इसके द्वारा ही उसके लिए उन विभिन्न भूमिकाओं का निर्धारण होता है जो उसे जीवन पर्यन्त पूर्ण करनी होती है। जाति समूह की सदस्यता अनिवार्य होती है तथा व्यक्ति को इसके प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता का निर्वाह करना पड़ता है। जातियों की चैतन्यपूर्ण अवस्था से ही जाति व्यवस्था की रचना होती है।

परम्परावादी सामाजिक संगठन में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना भारतीय राजनीति का अद्भुत पक्ष है। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का उन्मूलन सम्भव नहीं है, भले ही जाति का स्वरूप परिवर्तित होता रहे। इस परिवर्तन की प्रक्रिया को 'परम्पराओं की आधुनिकता' कहकर सम्बोधित किया गया है। विभिन्न विद्वानों की धारणा है कि राजनीतिक और विकासशील संस्थाएँ शून्य में विकसित नहीं होतीं। राजनीति एक प्रतियोगितात्मक कार्य है। इसका ध्येय कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त राजनीतिक सत्ता को पाना अथवा पहले से प्राप्त सत्ता पर वर्चस्व बनाये रखना होता है ताकि समाज के विभिन्न वर्गों को सहयोग द्वारा राजनीतिक शक्ति को सुनियोजित किया जा सके।

जाति तथा भारतीय राजनीति के बीच गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक संरचना में जाति संगठनात्मक संरचना में महत्पूर्ण इकाई है जिसमें व्यक्ति स्वेच्छा से रहना चाहता है। ऐसी स्थिति में राजनेता के पास एकमात्र विकल्प रहता है कि वह सामाजिक श्रेणी की सहायता से लक्ष्यपूर्ति का प्रयत्न करे। जाति तथा जाति व्यवस्था को केन्द्र में रखकर राजनीतिक हित साधन हेतु संयोजन का अवसर सहज सुलभ हो जाता है लेकिन इसके समानान्तर ही राजनीति के साथ अन्तःक्रिया करके जाति तथा जातिगत समूहों की पृथक

अस्मिता बनाने तथा सत्ता से लाभ प्राप्त करने का अवसर मिल ही जाता है।

स्वातंत्रयोत्तरकालीन राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की तुलना में बढ़ा है। जहाँ सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जाति की शक्ति घटी है वहाँ राजनीति एवं प्रशासन पर इसके बढ़ते हुए प्रभाव को राजनीतिज्ञों, प्रशासनाधिकारियों और केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने स्वीकार किया है। एक ओर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारकों ने जातियों के राजनीतिकरण को बढ़ाया है, दूसरी ओर कतिपय संवैधानिक उपबन्ध भी राजनीति पर जाति के प्रभुत्व में सहायक हुए हैं।

भारतीय राजनीति के निर्धारक तत्वों में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संविधान द्वारा यद्यपि जाति निरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की गई थी, तथापि देश के राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में जाति के प्रभाव से कोई क्षेत्र अछूता नहीं है। स्वाधीन भारत के सम्बन्ध में यह परिकल्पना की गई थी कि लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् स्वातंत्रयोत्तर भारत में जाति व्यवस्था का प्रभाव समाप्त हो जायेगा, किन्तु स्वतंत्रता के पांच दशकों के कालखण्ड में जाति व्यवस्था का भारतीय राजनीति से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। जाति के राजनीति पर प्रभाव के कारण ही 'जाति का राजनीतिकरण' या राजनीति में जातिवाद जैसे शब्द प्रचलित हैं।

जाति प्रथा का अर्थ एवं स्वरूप :– भारत में जातीय प्रथा को परम्परागत रूप में वैदिक काल से उत्पन्न माना जाता हैं वैदिक काल में वर्णव्यवस्था के आधार पर जातियों को वर्गीकृत किया गया था, जिसमें ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अछूत या जाति बहिष्कृत लोग आते थे। प्रारम्भ में जाति प्रथा में बंधन कठोर नहीं थे। यह जन्म पर नहीं वरन् कर्म पर आधारित थी। जाति में कुछ सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताएँ एक जैसी होती हैं– जैसे वंशानुगत व्यावसायिक विशेषताएँ, जन्म से मिला स्तर और समसदस्यता, संस्कार पद्धति की शुद्धता और अशुद्धता तथा इनके परिणामस्वरूप सामाजिक अलगाव और सगोत्रीय विवाह। परम्परागत रूप में जाति की सामाजिक विरासत कमोबेश व्यावसायिक वंशानुक्रम और श्रम विभाजन पर आधारित थी। मौलिक रूप में यह व्यवस्था सामाजिक सहयोग के सिद्धांत पर केन्द्रित थी।

भारत में जाति प्रथा का स्वरूप सदैव एक सा नहीं रहा है। आज से दो हजार वर्ष से भी पूर्व जब जाति प्रथा का अभ्युदय हुआ था, तब से लेकर अब तक जाति प्रथा के विविध रूप रहे हैं। मध्यकाल में जाति प्रथा का बंधन कठोर था। ब्रिटिश काल में जाति प्रथा में रूढ़िवादी नियम कमजोर पड़ने लगे थे, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के हितों के संरक्षण हेतु जातियों के विभाजन के पक्षधर थे। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक नवीन परिस्थितियों के कारण जाति प्रथा के ढाँचे एवं कार्यों में परिवर्तन हुआ है। इन परिवर्तनों में प्रमुख हैं– परम्परागत रूप में ब्राम्हणों की सर्वोच्च स्थिति में परिवर्तन, अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन, खान–पानों के प्रतिबन्ध में ढीलापन, व्यावसायिक गतिशीलता, अस्पृश्य जातियों को राजनीतिक रूप से समान अधिकार।

इस प्रकार भारत में जाति प्रथा के पम्परागत ढाँचे में परिवर्तन आ गया हैं जाति प्रथा के इस परिवर्तन के मूल में कुछ प्रमुख कारण जैसे– औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि, पाश्चात्य शिक्षा एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन का प्रभाव, राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान रूढ़िवादिता पर प्रहार, स्त्रियों की शिक्षा, संचार के साधनों में वृद्धि से गतिशीलता का बढ़ता दायरा आदि है। जातिवाद को समाप्त करने के लिए स्वतंत्रता के पश्चात् संवैधानिक तथा राजकीय निर्णयों से प्रयास किया गया।

भारतीय संविधान के भाग 3 के मूल अधिकारों से सम्बन्धित अनुच्छेद 17 में स्पष्ट रूप से अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया। अस्पृश्यता से उपजी किसी भी निर्योग्यता को अपराध घोषित कर वर्षों से व्याप्त छुआछूत, ऊँच–नीच के भेदभाव को समाप्त किया गया। सरकार द्वारा किए गए अन्य प्रयासों में 1954 में विशेष विवाह अधिनियम पारित करना, 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम तथा 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम पारित किए गए। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जाति प्रथा एवं राजनीति के मध्य अन्तःक्रिया का सुदृढ़ रूप परिलक्षित होता है। स्वतंत्र भारत के इतिहास में दशक दर दशक जाति का राजनीतिक प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ा है। देश में वयस्क मताधिकार लागू करने के पश्चात् जाति एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुई है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि भारत में जातीय प्रथा हर धर्म एवं समुदाय में थोड़े बहुत अंतर के साथ समान रूप से पाई जाती है एवं इस जाति प्रथा का प्रभाव

राजनैतिक एवं सामाजिक परिवेश पर पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है।

भारत में जाति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :– परिवर्तन प्रकृति का नियम है और कोई भी वस्तु उससे परे नहीं है। भारतीय जाति व्यवस्था पर भी यह नियम लागू होता है। जाति व्यवस्था भी भारत में कभी स्थिर व शाश्वत् नहीं रही तथा समय–समय पर उसमें परिवर्तन होते रहे।

आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व के सर्वमान्य उपलब्ध ग्रंथ श्रीमद् भगवत्गीता के तीसरे अध्याय के 13 वें श्लोक में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि प्रकृति के तीनों गुणों (रज, तम, सत) और उनसे संबद्ध कर्म के अनुसार मेरे द्वारा मानव समाज के चार विभाग रचे गये।'' इस विभाजन के अनुसार जो लोग ध्यान–साधना समाधि एवं अन्य कर्मकांडों के द्वारा पारलौकिक एवं आत्मिक ज्ञान की खोज में अपना सारा जीवन व्यतीत करते थे उन्हें ब्राम्हण कहा जाता था। कहा जाता है कि शत्रुओं के आक्रमण से अपने समाज और राज्य की रक्षा करने वाले लड़ाकू योद्धाओं को क्षत्रिय का दर्जा प्राप्त था। वैश्य जाति के लोग खेती–बाड़ी, पशुपालन एवं व्यापार आदि के माध्यम से अपना जीवन यापन करते थे तथा उन लोगों की गिनती शूद्रों में की जाती थी जो उपरोक्त तीन जातियों के लोगों की सेवा–चाकरी में लगे रहते थे और बदले में प्राप्त साधनों से ही अपनी आजीविका चलाते थे।

इस प्रकार जाति व्यवस्था का स्वरूप भारत में अति प्राचीनकाल से ही प्रचलित था। डॉ. घुरिये ने जाति के इतिहास को चार युगों वैदिक काल, उत्तरवैदिक काल, धर्मशास्त्र काल तथा वर्तमान काल में विभाजित किया है, वहीं डॉ. नर्मदा प्रसाद ने जाति के इतिहास को दस भागों में बाँटा है। यहाँ हम जाति की गतिशीलता या ऐतिहासिकता का अध्ययन निम्नलिखित कालों में कर सकते हैं।

प्राचीन काल :– सर्वप्रथम ऋग्वेद में वर्ण व्यवस्था का उल्लेख मिलता है जिसकी उत्पत्ति ब्रम्ह के विभिन्न अंगों से मानी गई है। इस युग में वर्णों का पेशे पर कोई प्रतिबंध नहीं था। इसी प्रकार एक वर्ण का दूसर वर्ण में विवाह कर सकता था। इस युग में चार वर्णों को चार रंग मान लिया गया था जैसे ब्राम्हण श्वेत वर्ण का, क्षत्रिय रक्तवर्ण का , वैश्य पीत वर्ण का तथा शूद्रों को कृष्ण वर्ण का। समय के साथ इस काल में ही वर्णों ने जाति की विशेषताऐं ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया था जिससे उनमें उच्चता व निम्नता के क्रम स्थापित हो चुके थे जिनमें ब्राम्हण सर्वोच्च व उसके बाद क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र थे। वैदिक काल के पश्चात् उत्तर वैदिक काल ब्राम्हणों व क्षत्रियों के बीच संघर्ष का काल था। इस युग में वर्ण शब्द के साथ–साथ 'जाति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ। आश्रमों एवं ऋणों की व्यवस्था केवल ब्राम्हणों के लिए ही मानी गई। यज्ञ करने शिक्षा ग्रहण करने एवं संस्कार करने का अधिकार केवल ब्राम्हणों को ही था। इस प्रकार इस युग में ब्राम्हणों की स्थिति अति उच्च हो गई। दूसरी ओर शूद्रों को काले रंग का माना गया और उनकी स्थिति बहुत गिर गई। शूद्रों को शिक्षा व उपनयन संस्कार का अधिकार नहीं था। इस युग में जाति के विवाह, व्यवसाय, खान–पान, छूआछूत और संस्करण के नियमों में कठोरता आ गई। इसके बाद धर्मशास्त्र काल आया जो ईसा की तीसरी सदी से ग्यारहवीं सदी तक माना जाता है। इस काल में अनेक स्मृतियों व संहिताओं की रचना हुई इसलिए इसे स्मृति युग भी कहा जाता है। इस युग में याज्ञवल्कप संहिता पाराशर संहिता, विष्णु संहिता व नारद स्मृति के आधार पर विभिन्न वर्गों के कर्तव्य निर्धारित किए गये। इस काल में भी ब्राम्हणों का महत्व बढ़ा व शूद्रों की स्थिति में गिरावट आई जिससे जाति व्यवस्था और सुदृढ़ हुई। इस युग में जातिगत पेशों को मान्यता दी गई किंतु दूसरी जाति के व्यवसाय भी अपनाये गये। इस युग में जाति को समाज का आवश्यक ओर स्वाभाविक अंग माना गया और जाति संगठन को बनाये रखने के लिए अनेक विधान बनाये गये।

मध्यकाल :– सत्रहवीं सदी में भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य के आगमन से पूर्व पूरा देश छोटी–बड़ी रियासतों में विभक्त हो चुका था। राजा–रजवाड़ों के इस काल का निरीक्षण करने पर विदित होता है कि रियासतों के इस दौर में जन्म पर आधारित जाति–प्रथा पूरे भारतीय समाज पर हावी हो चुकी थी तथा रियासतों की राजनीति पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव नजर आने लगा था। रियासतों की सैन्य टुकड़ियों में क्षत्रियों का वर्चस्व था और ब्राम्हण लोग भारतीय राजाओं को राज कार्य में सहायता करते थे तथा राजनीतिक निर्णय लेने में अपनी राय दिया करते थे।

इसके बाद भारत में ब्रिटिश काल का उदय हुआ। भारत में राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव एक लंबे ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। अंग्रेजी राज्य के समय में भी अंग्रेजों द्वारा कुछ कुशल और योग्य जातियों को प्रशासनिक कार्यो में ले लिया गया था। ब्राम्हण जाति का ज्ञान और शिक्षा पर आरंभ से ही

एकाधिकार रहा और इतिहास में इस जाति के लोगों ने राजनैतिक परामर्शदाता एवं प्रशासकों का कार्य किया है। इसलिये ब्रिटिश नागरिक सेवा तथा अन्य विद्वतापूर्ण पदों पर इस जाति को प्रवेश मिल गया। ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण भारतीय जातियों में भेदभाव बढ़े। कुछ विशेष जातियों को सरकार ने बढ़ावा दिया। सरकारी अभिलेखों में व्यक्ति के नाम एवं पंत के साथ उसकी जाति लिखना एक परम्परा बन गई।

स्वातंत्रोत्तर काल :– अंग्रेजों के भारत से जाने के बाद के काल को स्वातंत्रोत्तर काल की संज्ञा दी जाती है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतांत्रिक मूल्यों के उदय, आधुनिकता, विकास एवं राजनैतिक संस्थाओं के उद्‌भव के कारण भारत में जाति के परंपरागत स्वरूप को विलीन करने के लिए अनेक प्रयास किये गये तथा ऐसे संविधान का निर्माण किया गया जिसके द्वारा सामाजिक समानता के आदर्श को अपनाया गया। भारत में विद्यमान सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 15 के द्वारा धर्म, वंश, जाति, लिंग जन्म स्थान आदि के आधार पर जीवन के किसी भी क्षेत्र में भेदभाव के निषेध की व्यवस्था की गई है। सामाजिक समानता को स्थापित करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता का निषेध किया गया है तथा अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955 के अनुसार अस्पृश्यता को दंडनीय अपराध घोषित किया गया हैं इन व्यवस्थाओं के साथ ही संविधान निर्माताओं द्वारा अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों को विशेष आरक्षण व सुविधायें प्रदान करने हेतु संविधान में प्रावधान किए। इन प्रावधानों ने जातिगत प्राथमिकताओं को महत्वहीन बनाने के बजाए सुदृढ़ किया और भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में गहरी जड़ें जमा ली।

यद्यपि भारतीय संविधान के द्वारा सामाजिक असमानता के सभी रूपें को समाप्त करने का भरसक प्रयास किया गया है किन्तु व्यवहार में स्थिति यह है कि आज भी भारतीय समाज जातिगत आधार पर विभाजित है। आज भी जन्म के आधार पर उच्च व निम्न जातियाँ पाई जाती हैं। आज भी निम्न जातियों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। संविधान द्वारा अस्पृश्यता को गैर कानूनी घोषित किए जाने के बावजूद समाज में अस्पृश्यता की भावना विद्यमान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही हमारे राजनेताओं के द्वारा सामाजिक न्याय के नाम पर स्वार्थ की राजनीति की जाती रही है। राजनीतिज्ञों के द्वारा दलितोत्थान के नाम पर समाज के कुछ विशेष वर्गों को शिक्षा प्राप्ति से लेकर रोजगार प्रदान करने तक आरक्षण की जो संवैधानिक सुविधा प्रदान की गई। कालांतर में इस व्यवस्था ने भारतीय समाज का सामाजिक विभाजन किया। इससे सामाजिक रूप से ऊँचे व नीचे कहे जाने वाले समाज के वर्गों के बीच की खाई और गहरी ही हुई है।

भारत में जातीय भेदभाव के जो विभिन्न स्वरूप प्राचीनकाल, मध्यकाल तथा स्वातंत्रोत्तर काल तक रहे तथा उन्हें समाप्त करने के जो भी प्रयास किये गये वे पर्याप्त तो थे किन्तु भारत में राजनीति के बढ़ते प्रभाव तथा सत्ता प्राप्ति की उच्च लालसा ने कालांतर में जातियों को सत्ता प्राप्ति का साधन बना दिया। इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए विद्वानों ने स्वतंत्र भारत में राजनीति और जाति अंतर्क्रिया एवं प्रभाव में लिखा है कि ''भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् प्रजातांत्रिक व्यवस्था को अपनाते हुए ऐसी स्थिति निर्मित करने का प्रयत्न किया गया जिसमें भारतीय समाज में प्रचलित असमानताओं व भेदभाव को दूर किया जा सके और एक आधुनिक समाज का निर्माण हो सके। किंतु सार्वभौमिक मताधिकार व निर्वाचन राजनीति की आवश्यकताओं और उसके साथ ही आरक्षण की व्यवस्था ने पारम्परिक ढाँचे को तोड़ने विशेष आरक्षण व सुविधाऐं प्रदान करने हेतु संविधान में प्रावधान किए हैं। इन प्रावधानों ने जातिगत प्राथमिकताओं को महत्वहीन बनाने के बजाए सुदृढ़ किया और भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में गहरी जड़ें जमा ली।

कोई भी समाज ऐसा नहीं हो सकता जिसमें कि सभी लोग एक ही ढंग से विचार करें, एक समान हों। शरीर तथा मानसिक शिक्षण–प्रशिक्षण के कारण भिन्नताएँ सहज, सरल, स्वाभाविक होती है। हर समाज में उच्चता और निम्नता की स्थिति तथा स्तरीकरण होता ही है। अन्तर केवल सरल और जटिल समाजों के आधारों का है। सरल समाज में लिंग–स्त्री पुरूष, आयु–युवा, प्रौढ़, वृद्ध, आनुवंशिकता, वंश, जाति के आधार पर माने जाते हैं, जबकि जटिल समाज में यह शिक्षा, व्यवसाय, आय, शारीरिक और मानसिक श्रम के आधार पर उच्चता और निम्नता को निश्चित करते हैं।

जाति व वर्ण में सम्बन्ध :– वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत व्यवसाय का स्वरूप वैयक्तिक था। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था का यह स्वरूप परिवर्तित हुआ तथा यह वैयक्तिक न रहकर परिवारिक बन गया। अब व्यक्ति व समूह की पहचान व्यवसाय के आधार पर होने लगी। वर्ण के अन्तर्गत विकसित इन व्यवासयिक समूहों ने जाति का रूप ग्रहण कर लिया एक ही व्यवसाय में रत व्यक्तियों में समीपता की भावना एवं सहयोग का

विकास हुआ। घनिष्ठ सम्बन्धों एवं प्रगाढ़ सहभागिता के कारण सामाजिक समरूपता (रीति–रिवाज, कार्य पद्धतियाँ) आदि का विकास हुआ। इसका लाभ विवाह सम्बन्धों के निर्धारण, दम्पत्ति के पारस्परिक व परिवार के साथ समायोजन में सहयोगी बना। इस प्रकार अपने ही समूह (जाति में) विवाह करना न केवल अनिवार्य बन गया, वरन् सुविधाजनक भी रहा।

उपर्युक्त परिवर्तन ने जहाँ एक जाति को संगठित करने में सहायता की, वहीं जातियों में पारस्परिक दूरी भी उत्पन्न की। इस विकास में व्यवसाय के स्वरूप को आधार मान लेने के कारण धीरे–धीरे वर्णों में समान सामाजिक स्थिति समाप्त हो गयी। व्यवसाय के आधार पर ही व्यक्ति और समूह की सामाजिक स्थिति निर्धारित हुई। व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण व्यवसाय के आधार पर होने से तथा विविध वर्णों में ऊँच नीच का संस्तरण बन जाने के कारण प्रत्येक वर्ण के सदस्यों में अपने से उच्च वर्ण में पहुँचने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वह अपने व्यवसाय को त्याग कर उच्च वर्ण का व्यवसाय अपनाने लगा। ब्राम्हणों ने अपनी उच्च स्थिति का लाभ उठाकर आपाधापी और अव्यवस्था को रोकने, अपने वर्ण में अन्य वर्णों के सदस्यों को रोकने तथा वर्णों के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करने के लिए खान–पान, सम्पर्क, स्पर्श, आवागमन, सामाजिक स्थिति, विशेषाधिकार से सम्बन्धित अनेकानेक नियम बना लिये। सर्वोच्च स्थिति रखने के कारण वे ही इन नियमों को लागू करने तथा त्रुटिकर्ता को दण्डित करने का प्रासंगिक और न्यायिक कार्य भी करने लगे।

उपर्युक्त परिस्थितियों में जातियों के बीच दूरी घटने के स्थान पर निरंतर बढ़ती चली गयी। इसने इतना वीभत्स रूप ग्रहण कर लया कि मान, मानव का स्पर्श अथवा दर्शन भी अशुभ और अपवित्र मानने लगा।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त वर्ण व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालने एवं जाति व्यवस्था को विकसित करने में एक महत्वपूर्ण कारक यह भी रहा कि जनसंख्या वृद्धि के मात्र चार वर्णों के मोटे विभाजन से श्रम विभाजन करना तथा विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना सम्भव नहीं रहा। इसीलिए वर्णों का उप वर्णों में विभाजन प्रारंभ हुआ। इस विभाजन का आधार योग्यताएँ, क्षमताएँ न रहकर व्यवसाय बन गय। उपर्युक्त दशाओं ने वर्ण व्यवस्था के पुरातन 'स्वरूप' में अमूल चूल परिर्वतन कर दिया। इसका स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया।

संदर्भ सूची :–

1. मिश्रा आर.एन., रीजनालिज्म एण्ड स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया, आशीष पब्लिशिंग नई दिल्ली, 1984, पृ. 90.
2. नेना जैन शर्मा, भारत में राज्यों की राजनीति कालेज बुक डिपो जयपुर, 2004 पृ. 26–38.
3. ओझा शीला, म.प्र. राजनीति में भारतीय जनता पार्टी इन म.प्र. राजनीति विविध आयाम, प्रिंटबेल जयपुर, 2008, पृ. 68.
4. फडिया बी.एल., स्टेट पोलिटिक्स इन इण्डिया, रेडियेट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1984, पृ. 15.
5. शर्मा के.एल., कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1994, पृ. 23–27.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

वेदों में पर्यावरण विज्ञान का वैशिष्ट्य

प्रो. उमाशंकर तिवारी
आचार्य एवं अध्यक्ष, वेद विभाग, म.म.यो.वै.वि.वि. करौंदी, कटनी (म.प्र.)

वेद का सन्देश है कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जल का पान करे, शुद्ध अन्न का भोजन करे, शुद्ध मिट्टी में खेले–कूदे, शुद्ध भूमि में खेती करे। ऐसा होने पर ही उसे वेद–प्रतिपादित सौ वर्ष या सौ से भी अधिक वर्ष की आयु प्राप्त हो सकती है। परन्तु आज न केवल हमारे देश में, अपितु विदेशों में भी प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि मनुष्य को न शुद्ध वायु सुलभ है, न शुद्ध जल सुलभ है, न शुद्ध अन्न सुलभ है, न शुद्ध मिट्टी और न ही शुद्ध भूमि सुलभ है। कल–कारखानों से निकले अपद्रव्य, धुओं, गैस, कूड़ा–कचरा, वन–विनाश आदि इस प्रदूषण के कारण हैं। प्रदूषण इस स्थिति तक पहुंच गया है कि कई स्थानों पर तेजाबी वर्षा तक हो रही है। 18 जुलाई, 1983 के दिन भारत के बम्बई शहर में तेजाबयुक्त वर्षा हो चुकी है। यदि प्रदूषण निरन्तर बढ़ता गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह भूमि मानव तथा अन्य प्राणियों के निवासयोग्य नहीं रह जायेगी।

पर्यावरण–प्रदूषण की चिन्ताजनक स्थिति को देखकर 5 जून, 1972 को बारह संयुक्त राष्ट्रों की एक बैठक इस विषय पर विचार करने के लिए स्टाकहोम (स्वीडन) में आयोजित हुई थी, जिसके फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण–सुरक्षा हेतु प्रभावशाली कदम उठाए गए। उक्त गोष्ठी में भारत की तीसरी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी 'पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति एवं उसका विश्व के भविष्य पर प्रभाव' विषय पर अपना विचार प्रतिपादित किया था। उसके पश्चात् भारत में पर्यावरण–प्रदूषण का अध्ययन करने, उसे रोकने के उपाय सुझाने एवं उनके क्रियान्वयन करने हेतु अनेक सरकारी तथा व्यक्तिगत या जनता की ओर से सामूहिक प्रयास होते रहे हैं तथा आज भी अनेक संस्थाएं इस दिशा में कार्यरत हैं। प्रस्तुत लेख में हम यह दर्शायेंगे कि वेद का पर्यावरण के सम्बन्ध में क्या विचार है!

1. **वायु– स्वच्छ वायुमण्डल का महत्त्व** :– स्वच्छ वायु का सेवन ही प्राणियों के लिए हितकर है यह बात वेद के निम्न मन्त्रों से प्रकट होती है–

"वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत।।" –ऋ० १०/१८६/१

वायु हमें ऐसा औषधि प्रदान करे, जो हमारे हृदय के लिए शांतिकर एवं आरोग्यकर हो, वायु हमारे आयु के दिनों को बढ़ाए।

"यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।।" –ऋ० १०/१८६/३

हे वायु! जो तेरे घर में अमृत की निधि रखी हुई है, उसमें से कुछ अंश हमें भी प्रदान कर, जिससे हम दीर्घजीवी हों।

यह वायु के अन्दर विद्यमान अमृत की निधि ओषजन या प्राणवायु है, जो हमें प्राण देती है तथा शारीरिक मलों को विनष्ट करती है। उक्त मन्त्रों से यह भी सूचित होता है कि प्रदूषित वायु में श्वास लेने से मनुष्य अल्पजीवी तथा स्वच्छ वायु में कार्बन–डाई ऑक्साइड की मात्रा कम तथा ओषजन की मात्रा अधिक होती है। उसमें श्वास लेने से हमें लाभ कैसे पहुंचता है, इसका वर्णन वेद के निम्नलिखित मन्त्रों में किया गया है–

"द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः।।
आ वात वाहि भेषजं विश्वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।" –ऋ०
१०/१३७/२,३ अथर्व० ४/१३/२,३

ये श्वास–निःश्वास रूप दो वायुएँ चलती हैं, एक बाहर से फेफड़ों के रक्त–समुद्र तक और दूसरी फेफड़ों से बाहर के वायुमंडल तक। इनमें से पहली, हे मनुष्य तुझे बल प्राप्त कराए और दूसरी रक्त में जो दोष है उसे अपने साथ बाहर ले जाये। हे शुद्ध वायु, तू अपने साथ ओषधि को ला। हे वायु, शरीर में जो मल है उसे तू बाहर निकाल। तू सब रोगों की दवा है, तू देवों का दूत होकर विचरता है।

वनस्पतियों द्वारा वायु–शोधन :– कार्बन–डाई ऑक्साइड की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ने पर वायु प्रदूषित हो जाता है। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि प्राणी ओषजन ग्रहण करते हैं तथा कार्बन डाई ऑक्साइड छोड़ते हैं, किन्तु वनस्पतियां कार्बन डाई

ऑक्साइड ग्रहण करती हैं तथा ओषजन छोड़ती हैं। वनस्पतियों द्वारा ओषजन छोड़ने की यह प्रक्रिया प्रायः दिन में ही होती है, रात्रि में वे भी ओषजन ग्रहण करती तथा कार्बन डाई ऑक्साइड छोड़ती हैं। पर कुछ वनस्पतियां ऐसी भी हैं जो रात्रि में भी ओषजन ही छोड़ती हैं। कार्बन डाई ऑक्साइड को चूसने के कारण वनस्पतियां वायु–शोधन का कार्य करती हैं। वायु–प्रदूषण से बचाव के लिए सबसे कारगर उपाय वनस्पति–आरोपण है। वेद भगवन् का सन्देश है "वनस्पति वन आस्थापयध्वम् अर्थात् वन में वनस्पतियाँ उगाओ –ऋ० १०/१०१/११"। यदि वनस्पति को काटना भी पड़े तो ऐसे काटें कि उसमें सैकड़ों स्थानों पर फिर अंकुर फूट आएं। वेद का कथन है–

''अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह, सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम।।'' –यजु० ५/४३

हे वनस्पति, इस तेज कुल्हाड़े ने महान् सौभाग्य के लिए तुझे काटा है, तू शतांकुर होती हुई बढ़, तेरा उपयोग करके हम सहस्रांकुर होते हुए, वृद्धि को प्राप्त करें।

''अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात।'' –यजु० १२/१००
हे ओषधि, तू दीर्घायु होती हुई शत अंकुरों से बढ़।

वेद सूचित करता है कि सूर्य और भूमि से वनस्पतियों में मधु उत्पन्न होता है, जिससे वे हमारे लिए लाभदायक होती हैं–

''मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।'' –यजु० १३/२९

वनस्पति हमारे लिए मधुमान हो, सूर्य हमारे लिए मधुमान् हो, भूमियाँ हमारे लिए मधुमती हों।

फूलों–फलों से लदी हुई ओषधियाँ नित्य भूमि पर लहलहाती रहें, ऐसा वर्णन भी वेद में मिलता है– "ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः –ऋ० १०/९७/३"। वेद यह भी कहता है "मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव। मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां अर्थात् ओषधियों का मूल, मध्य, अग्र, पत्ते, फूल सभी कुछ मधुमय हों –अथर्व० ८/७/१२"।

वेद मनुष्य को प्रेरित करता है "मापो मौषधीहिंसीः अर्थात् तू जलों की हिंसा मत कर, ओषधियों की हिंसा मत कर –यजु० ६/२२"। जलों की हिंसा से अभिप्राय है उन्हें प्रदूषित करना तथा ओषधियों की हिंसा का तात्पर्य है उन्हें विनष्ट करना।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में ओषधियों के पांच वर्ग बताए गए हैं तथा यह भी कहा गया है कि ये हमें प्रदूषण से छुड़ाएँ।

''पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।
दर्भो भ^{3}गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः।।'' –अथर्व० ११/६/१५

'सोम, दर्भ, भंग, यव, सहस् आदि ओषधियों का ज्ञानपूर्वक प्रयोग करते हुए हम रोगों का समूल विनाश करते हैं।

वेद में घरों के समीप कमल–पुष्पों से अलंकृत छोटे–छोटे सरोवर बनाने का विधान मिलता है– ''उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः'' –अथर्व ४/३४/५,–७। फव्वारों का विधान इस हेतु किया गया प्रतीत होता है कि ऊपर उठती तथा चतुर्दिक् फैलती जल–धाराओं पर जब सूर्य–किरणें पड़ती हैं, तब उनमें प्रदूषण को हरने की विशेष शक्ति आ जाती है।

अथर्ववेद के भूमिसूक्त में भूमि को कहा गया है, "अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु'' अर्थात् तेरे जंगल हमारे लिए सुखदाई हों। –अथर्व० १२/१/११,१७"।

2. **शुद्ध जल का महत्त्व** :– वेद का कथन है "अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् अर्थात् शुद्ध जलों के अन्दर अमृत होता है, ओषधि का निवास रहता है –ऋ० १/२३/१९"। "आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि'' अर्थात् शुद्ध जल के सेवन से मनुष्य रसवान् हो जाता है –ऋ० १/२३/२३"। "उर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्त्रुतम्'' अर्थात् शुद्ध जलों में ऊर्जा, अमृत, तेज एवं पोषक रस का निवास होता है –यजु० २/३४। "शुद्ध जल पान किये जाने पर पेट के अंदर पहुंचकर पाचन–क्रिया को तीव्र करते हैं। वे दिव्यगुणयुक्त, अमृतमय, स्वादिष्ट जल रोग न लानेवाले, रोगों को दूर करनेवाले, शरीर के प्रदूषण को दूर करनेवाले तथा जीवन–यज्ञ को बढ़ानेवाले होते हैं –यजु० ४/१२।

''आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।

महे रणाय चक्षसे।।'' –ऋ० १०/६/१

शुद्ध जल आरोग्यदायक होते हैं, शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, वृद्धि प्रदान करते हैं, कण्ठस्वर को ठीक करते हैं तथा दृष्टि–शक्ति बढ़ाते हैं।

''शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः।।'' –ऋ० १०/६/४

शुद्ध जलों का पान करके एवं उन्हें अपने चारों ओर बहाकर अर्थात् उनमें डुबकी लगाकर या कटि–स्नान करके हम अपना स्वास्थ्यरूप अभीष्ट प्राप्त कर सकते हैं।

जलों के प्रकार :– वेदों में जल कई प्रकार के वर्णित किये गए हैं और उनके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वे सबके लिए प्रदूषणशामक एवं रोगशामक हों।

''शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।।
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूष्याः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः।।'' –अथर्व० १६/२/१–२

इन मन्त्रों में जलों के निम्नलिखित प्रकारों का उल्लेख हुआ है:

१. हिमालय के जल (हेमवतीः आपः)– ये हिमालय पर बर्फ–रूप में रहते हैं अथवा चट्टानों के बीच में बने कुंडों में भरे रहते हैं, अथवा पहाड़ी झरनों के रूप में झरते रहते हैं।
२. स्त्रोतों के जल (उत्स्याः आपः)– ये पहाड़ी या मैदानी भूमि को फोड़कर चश्मों के रूप में निकलते हैं। कई चश्मों में गन्धक होता है, गन्धक का एक चश्म देहरादून के समीप सहस्रधारा में है।
३. सदा बहते रहनेवाले जल (सनिष्यदाः आपः)– ये सदा बहते रहने के कारण अधिक प्रदूषित नहीं हो पाते हैं।
४. वर्षाजल (वर्ष्याः आपः)– वर्षा से मिलनेवाले जल शुद्धि तथा ओषधि–वनस्पतियों एवं प्राणियों को जीवन देनेवाले होते हैं। अथर्ववेद के प्राण–सूक्त (११/४/५) में कहा है कि जब वर्षा के द्वारा प्राण पृथिवी पर बरसता है तब सब प्राणी प्रमुदित होने लगते हैं।
५. मरुस्थलों के जल (धन्वन्याः आपः)– मरुस्थलों की रेती में अभ्रक, लोहा आदि पाए जाते हैं, उनके सम्पर्क से वहां के जलों में भी ये पदार्थ विद्यमान होते हैं।
६. आर्द्र प्रदेशों के जल (अनूप्याः आपः)– जहां जल की बहुतायत होती है वे प्रदेश अनूप कहलाते हैं, तथा उन प्रदेशों में होनेवाले जल अनूप्य। यहां के जल कृमि–दूषित भी हो सकते हैं।
७. भूमि खोदकर प्राप्त किये जल (खनित्रिमाः आपः)– कुएं, हाथ के नलों आदि के जल इस कोटि में आते हैं।
८. घड़ों में रखे जल (कुम्भेभिः आभृताः आपः)– घड़े विभिन्न प्रकार की मिट्टी के तथा सोना, चांदी, तांबा आदि धातुओं के भी हो सकते हैं।

जल–शोधन :– जलों को प्रदूषित न होने देने तथा प्रदूषित जलों को शुद्ध करने के कुछ उपायों का संकेत भी वेदों में मिलता है।

''यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वेदेवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।''
–ऋ० ७/४६/४

वे दिव्य जल हमारे लिए सुखदायक हों, जिनमें वरुण, सोम, विश्वेदेवाः तथा वैश्वानर अग्नि प्रविष्ट हैं।

यहां वरुण शुद्ध वायु या कोई जलशोधक गैस है, सोम चन्द्रमा या सोमलता है, विश्वेदेवाः सूर्यकिरणें हैं तथा वैश्वानर अग्नि सामान्य आग या विद्युत् है।

ऋग्वेद में लिखा है "यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम्। विश्वेदेवा निरितस्तत्सुवन्तु अर्थात् यदि नदियों में विष उत्पन्न हो गया है तो सब विद्वान् जन मिलकर उसे दूर कर लें –ऋ० ७/५०/३।

3. **भूमि** :– भूमि को वेद में माता कहा गया है "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' –अथर्व० १२/१/१२, "उपहूता पृथिवी माता'' –यजु० २/१०। वेद कहता है–

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।
–अथर्व० १२/१६६

जिस भूमि की सेवा करनेवाली नदियां दिन–रात समान रूप से बिना प्रमाद के बहती रहती हैं वह भूरिधारा भूमिरूप गौ माता हमें अपना जलधार–रूप दूध सदा देती रहें।

भूमि की हिंसा न करें :– वेद मनुष्य को प्रेरित करते हुए कहता है "पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा

हिंसीः अर्थात् तू उत्कृष्ट खाद आदि के द्वारा भूमि को पोषक तत्त्व प्रदान कर, भूमि को दृढ़ कर, भूमि की हिंसा मत कर"। भूमि की हिंसा करने का अभिप्राय है उसके पोषक तत्वों को लगातार फसलों द्वारा इतना अधिक खींच लेना कि फिर वह उपजाऊ न रहे। भूमि पोषकतत्त्वविहीन न हो जाये एतदर्थ एक ही भूमि में बार–बार एक ही फसल को न लगाकर विभिन्न फसलों को अदल–बदलकर लगाना, उचित विधि से पुष्टिकर खाद देना आदि उपाय हैं। आजकल कई रासायनिक खाद ऐसे चल पड़े हैं, जो भूमि की उपजाऊ–शक्ति को चूस लेते हैं या भूमि की मिट्टी को दूषित कर देते हैं।

भूमि में या भूतल की मिट्टी में यदि कोई कमी आ जाये तो उस कमी को पूर्ण किये जाने की ओर भी वेद ने ध्यान दिलाया है "यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य'' अर्थात् प्रजापति राजा विभिन्न उपायों द्वारा उस कमी को पूरा करे –अथर्व० १२/१/६१। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है "सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु उत्तानाया हृदयं यद् विकस्तम्'' अर्थात् उत्तान लेटी हुई भूमि का हृदय यदि क्षतिग्रस्त हो गया है तो मातरिश्वा वायु उसमें पुनः शक्ति–संधान कर दे –यजु० ११/३६। मातरिश्वा वायु का अर्थ है अंतरिक्षसंचारी पवन, जो जल, तेज आदि अन्य प्राकृतिक तत्त्वों का भी उपलक्षक है। परन्तु यदि जल, वायु आदि ही प्रदूषित हो गए हों तो उनसे भूमि की क्षति–पूर्ति कैसे हो सकेगी?

4. **अग्निहोत्र द्वारा पर्यावरण–शोधन** :– वैदिक संस्कृति में अग्निहोत्र या यज्ञ का बहुत महत्त्व है। प्रत्येक गृहस्थ एवं वानप्रस्थ के करने योग्य पंच यज्ञों में अग्निहोत्र का भी स्थान है, जिसे देवयज्ञ कहा जाता है। अग्निहोत्र यज्ञाग्नि में शुद्ध घृत एवं सुगन्धित, वायुशोधक, रोगनिवारक पदार्थों की आहुति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। एक अग्निहोत्र वह है जो धार्मिक विधि–विधानों के साथ मन्त्रपाठपूर्वक होता है, दूसरे उसे भी अग्निहोत्र कह सकते हैं जिसमें मन्त्रपाठ आदि न करके विशुद्ध वैज्ञानिक या चिकित्साशास्त्रीय दृष्टि से अग्नि में वायुशोधक या रोगकृमिनाशक पदार्थों का होम किया जाता है। आयुर्वेद के चरक, बृहन्निघन्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, गदनिग्रह आदि ग्रन्थों में ऐसे कई योग वर्णित हैं, जिनकी आहुति अग्नि में देने से वायुमण्डल शुद्ध होता है तथा श्वास द्वारा धूनी अन्दर लेने से रोग दूर होते हैं। वेद में अनेक स्थानों पर अग्नि को पावक, अमीवचातन, पावकशोचिश्, सपत्नदंभन आदि विशेषणों से विशेषित करके उसकी शोधकता प्रदर्शित की गई है। यज्ञ का फल चतुर्दिक् फैलता है (यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा) –यजु० ८/६२। अग्निहोत्र ओषधि का काम करता है (अग्निष्कृणोतु भेषजम्) –अथर्व० ६/१०६/३। अग्निहोत्र से शरीर की न्यूनता पूर्ण होती है (अग्ने यन्मे तत्त्वा ऊनं तन्म आपृण) –यजु० ३/१७। अग्नि वायुमण्डल से समस्त दूषक तत्त्वों का उन्मूलन करता है (अग्निर्वृत्राणि दयते पुरुणि) –ऋ० १०/८०/२। वेद मनुष्यों को आदेश देता है "आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम्'' अर्थात् तुम अग्नि में शोधक द्रव्यों की आहुति देकर वायुमण्डल को शुद्ध करो –साम० ६३"।

अग्निहोत्र की अवश्यकर्तव्यता की ओर संकेत करते हुए वेद कहते हैं–

''स्वाहा यज्ञं कृणोतन'' अर्थात् स्वाहापूर्वक यज्ञ करो –ऋ० १/१३/१२, ''सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन'' अर्थात् सुसमिद्ध अग्निज्वाला पर पिघले घी की आहुति दो –यजु० ३/२, अग्निमिन्धीत मर्त्यः'' अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अग्नि प्रज्वलित करे –साम० ८२, सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यत अर्थात् सब मिलकर अग्निहोत्र किया करो –अथर्व० ३/३०/६।

''सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।
प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता।।'' –अथर्व० १६/५५/३–४

अग्निहोत्र का समय सायं और प्रातः है। सायं किया हुआ अग्निहोत्र प्रातःकाल तक वायुमण्डल को प्रभावित करता रहता है और प्रातः किये गए अग्निहोत्र का प्रभाव सायंकाल तक वायुमण्डल पर पड़ता है।

''सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।''
–यजु० २१/६

अग्निहोत्र ऐसी विशाल, दिव्य, दीप्तिमयी, निश्छिद्र, कल्याणदायिनी, अखण्डित, निश्चित रूप से आगे ले जानेवाली, विधिविधानरूप सुन्दर चप्पुओं वाली, निर्दोष, न चूनेवाली नौका है जो सदा यजमान की रक्षा ही करती है।

''आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणो यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां,
श्रोत्रंयज्ञेन कल्पतां, वाग् यज्ञेन कल्पतां, मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम्''।। –यजु० १८/२६

अग्निहोत्र–रूप यज्ञ से आयु बढ़ती है, प्राण सबल होता है, चक्षु सशक्त होती है, श्रोत्र और वाणी सामर्थ्ययुक्त होते हैं, मन और आत्मा बलवान् बनते हैं।

ऋग्वेद में कहा है– ''सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति'' अर्थात् जो अग्निहोत्र करता है उसे सुवीर्य प्राप्त होता है, वह पुष्ट होता है –ऋ० ३/१०/३।

5. **आंधी, वर्षा और सूर्य द्वारा पर्यावरण–शोधन** :– प्राकृतिक रूप से आंधी, वर्षा और सूर्य द्वारा कुछ अंशों में स्वतः प्रदूषण–निवारण होता रहता है।

''वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः।
दिविस्पृग् यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या
रेणुमस्यन्''।। –ऋ० १०/१६८/१

वायु–रथ की महिमा को देखो। यह बाधाओं को तोड़ता–फोड़ता हुआ चला आ रहा है। कैसा गरजता हुआ इसका घोष है! आकाश को छूता हुआ, दिक्प्रांतों को लाल करता हुआ, भूमि की धूल को उड़ाता हुआ वेग से जा रहा है।

मानसून पवन रूप मरुत् मेह बरसाते हैं ''दृ वपन्ति मरुतो मिहम्'' –ऋ० ८/७९४। ये वर्षा द्वारा प्रदूषण को दूर करते हैं।

''आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम्।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।'' –अथर्व० ३/३१९१

बादल की वृष्टि से हम उत्कृष्ट स्थिति को पा लेते हैं, सब पेड़–पौधे, पर्वत, भूप्रदेश धुलकर स्वच्छ हो जाते हैं, रोग दूर हो जाते हैं, प्राणियों की आयु लम्बी हो जाती है।

''उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः।।'' –यजु० १९/४३

प्रकृति में सूर्य भी प्रदूषण का निवारक है। वह अपने रश्मिजाल से तथा अपने द्वारा की जानेवाली वर्षा से पवित्रता प्रदान करता है।

''येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि
भानुना।
तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्वप्न्यं सुव।।''
–ऋ० १०/३७९४

सूर्य अपनी ज्योति से अन्धकार को बांधता है, समस्त अन्नाभाव को, अन्नाहुति को, रोग को और दुःस्वप्न को दूर करता है।

वेद में कहा है "सा घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि अर्थात् सूर्य अमृत बरसाता है –अथर्व० ६/१९३", "सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः अर्थात् हे सूर्य, जो तेरा ताप है उससे तू उसे तपा डाल जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं –अथर्व० २/२१९१"।

अंत में उपसंहार–रूप में हम कह सकते हैं कि वायु, जल, भूमि, आकाश, अन्न आदि पर्यावरण के सभी पदार्थों की शुद्धि के लिए वेद भगवन् हमें जागरूक करते हैं तथा आई हुई अस्वच्छता को दूर करने का आदेश देते हैं। पर्यावरण की शुद्धि के लिए वेद भगवन् वनस्पति उगाना, अग्निहोत्र करना, विद्युत, अग्नि, सूर्य एवं ओषधियों का उपयोग करना आदि उपायों को सुझाते हैं।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

नासिरा शर्मा कृत 'शाल्मली' उपन्यास में पारिवारिक संबंध

गीता नायक, शोध निर्देशक
श्वेता पाण्डेय, शोधार्थी
हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

परिवार वह प्राथमिक समूह हैं जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण किया जाता है। व्यक्ति की जैविक आवश्यकता के साथ–साथ उसके मानसिक विकास की प्रक्रिया में भी परिवार का ही योगदान है। परिवार सभी सामाजिक समूहों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक समूह है। परिवार के अभाव में मानव समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। बड़े हो या छोटे, आदिम हो या आधुनिक सभी समाजों में परिवार की आवश्यकता रही है। परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है, लेकिन परिवार का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है, भिन्न–भिन्न देशों एवं स्थानों पर परिवार के अलग–अलग रूप पाये जाते है, कहीं पर मातृसत्तात्मक परिवार है, तो कहीं पर पितृसत्तात्मक, कहीं बहु–विवाह परिवार हैं तो कहीं बहुपत्नी परिवार हैं। पश्चिमी देशों में एकल परिवार या दाम्पत्य परिवार की प्रधानता है, तो भारतीय गाँवों में संयुक्त परिवार या विस्तृत परिवार की। विस्तृत परिवार के अंतर्गत माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई–बहिन, चाचा–चाची, दादा–दादी, बुआ–फूफा, चचेरे भाई–बहिन आदि को सम्मिलित किया जाता है।

परिवार शब्द की उत्पत्ति के संबंध में एलमर ने अपनी पुस्तक 'Sociology of Family' में लिखा है कि अंग्रेजी शब्द Family लैटिन शब्द Famus से बना है। इस शब्द से ऐसे समूह का बोध होता है जिसके अंतर्गत माता–पिता एवं उनके बच्चे आते है। ट्रासकल और मैरिल के अनुसार – "परिवार माता–पिता और सन्तान की एक ऐसी स्थाई समिति है, जिसके प्राथमिक कार्य शिशु का समाजीकरण और सदस्यों के अभिज्ञान तथा अनुक्रिया की इच्छाओं की संतुष्टि हैं।"[1]

क्लेयर के अनुसार – "परिवार से हम संबंधों की वह व्यवस्था समझते है जो माता–पिता और उनकी संतानों के बीच पाई जाती है।"[2]

अतः परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट है कि परिवार माता–पिता, बच्चों एवं निकट संबंधियों का ऐसा स्थाई संगठन है, जिसे विवाह, सन्तानोत्पत्ति तथा वंश नाम के आधार पर व्यवस्थित ओर कायम रखा जाता है।

नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य में परिवार के सभी पक्षों एवं समस्याओं को उद्घाटित किया है जो विशेषतः स्त्री समस्या पर आधारित हैं, उन्होंने अपने साहित्य में अलग वर्चस्व लिए ऐसी औरतें तैयार की है जो अपनी स्वतंत्रता के लिए स्वयं ही जूझती है उनकी सोच का दायरा किसी भी देश, परिवार एवं समाज से बँधा न होकर वैश्विक परिप्रेक्ष्य में फैला है। नासिरा जी ने उपर्युक्त उपन्यास 'शाल्मली' में घर, परिवार की समस्या, दाम्पत्य जीवन के तनाव, कामकाजी महिला के शोषण आदि समस्याओं का चित्रण किया है। परिवार में अधिकांश स्त्रियाँ काम के साथ–साथ अपने जीवन में सफलता और व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास की चेष्ठा भी कर रही हैं। परिवार से बाहर निकलकर कमाने का अधिकार तो उसे मिला, लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारियों से उसे मुक्ति नहीं मिली। लेखिका ने उपर्युक्त उपन्यास के माध्यम से पिता–पुत्री, माता–पुत्री, सास–बहू के संबंधों के साथ–साथ पति–पत्नि के संबंधों, समीकरणों और समझौतों को द्वंद्वात्मक रूप में चित्रित किया है। वह पुरुष–वर्चस्व एवं व्यवस्था के उपनिवेश के खिलाफ संघर्ष भी करती है, और उसका हिस्सा भी बनती है। पति–पत्नी का संबंध विश्वास की मजबूत डोर से बँधा होता है जितनी मजबूत डोर होगी, उतना ही मजबूत संबंध होगा, किन्तु एक–दूसरे के द्वारा जब विश्वास पर आघात किया जाता है तो संबंध जल्द ही टूट जाता है।

शाल्मली उपन्यास की नायिका शाल्मली आरम्भ से ही अपने अस्तित्व के प्रति संघर्षशील रहती है, किन्तु पति के द्वारा किए गए विश्वासघात से वह टूट जाती हैं और दाम्पत्य संबंध तोड़ने का विचार करती है। शायद इससे बड़ा दंड वह नरेश को नहीं दे सकती थी इस संबंध में शाल्मली नरेश से कहती हैं – "मैं बिना किसी धर्मग्रन्थ, बिना संविधान की सहायता लिए तुम्हें उसी पल मुक्त कर दूंगी, यह मैं वचन देती हूँ।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण में लेखिका ने शाल्मली के माध्यम से स्त्रियों को अपने साथ होने वाले अन्याय का प्रतिकार करने के लिए जागरूक करने का प्रयास किया है।

उपर्युक्त उपन्याय की नायिका शाल्मली अपने पति नरेश को समझाने की कोशिश करती है कि 'पारस्परिक समझ' और 'आपसी प्रेम' वैवाहिक जीवन को जीने की एक सुगम राह है, किन्तु बात और बिगड़

जाती है और नरेश का संवाद इन शब्दों से शुरु होता है – "तुम ठहरी एक आधुनिक विचार की महिला ..... विचारों में स्वतंत्र, व्यवहार में उन्मुक्त, तुम्हारे संस्कार..... .।"[4]

प्रस्तुत उदाहरण के द्वारा स्पष्ट है कि जो विचारों की आधुनिकता का गुण होना चाहिए वह नरेश में कुंठा पैदा करने का माध्यम बन जाता है।

उपर्युक्त उपन्यास के अंतर्गत पति–पत्नी का अन्य उदाहरण इस प्रकार है – नरेश को पढ़ी–लिखी पत्नी तो चाहिए, लेकिन ऐसी नहीं जो नौकरी के बाद आज्ञाकारी पत्नी के रूप में आचरण नहीं करती उसकी सुविधाओं का ध्यान नहीं रखती तो ऐसी पत्नी के गुणों की कोई कीमत नहीं। इसलिए शाल्मली जब–जब अपनी बातों का औचित्य प्रदर्शित करने के लिए कोई ऐसा तर्क देती है जिसका उत्तर नरेश को नहीं सूझता है और वह झुंझला कर कह देता है – "पत्नी हो, पत्नी की तरह रहो, समझी।"[5]

इस प्रकार लेखिका ने दर्शाया है कि औरतों को गृहस्थी और नौकरी दोनों ही कार्य करने के बाद भी दोनों पक्ष संतुष्ट रहे इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता हैं, परन्तु पति को अपना काम अधिक महत्वपूर्ण लगता है, वह पत्नी को दबाने का प्रयास करता हैं।

'शाल्मली' उपन्यास में पिता–पुत्री का उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है – पिता–पुत्री संबंध में एक पिता का प्रेम व रूझान बेटी की तरफ ज्यादा होता है, दोनों एक–दूसरे की भावना को अच्छी तरह समझ सकते हैं लेकिन पारिवारिक संबंधों में पिता द्वारा अपनी पुत्री का विवाह अनमेल हो जाता है तो उसका खामियाजा लड़की को ही भुगतना पड़ता है।

शाल्मली के पिता नरेश से शाल्मली के विवाह के लिए स्वयं को दोषी मानते है और पछताते हुए कहते हैं – मैं जानता तो यहाँ न ब्याहता मुझे शालू, बड़ों ने ठीक ही कहा है कि घर परिवार को ठोक बजाने के बाद कुछ भी महत्वपूर्ण होता है। नरेश के पास जो संस्कार है वे तेरे संस्कार से पूर्णतः भिन्न है न उसकी गलती है न तेरी दुःख तो मुझे है जो ऊपर से पढ़ा–लिखा लड़का देखकर बाकी चीजों की तरफ से आँखें बद कर ली।" तुम दोनों सोच के दो विभिन्न धारे, नदी के दो किनारे हो, मगर नदी के बहाव के दोनों किनारे साथ–साथ तो लेकर चलते हैं, चाहे उनका रूप–आकार कितना भी भिन्न क्यों न हो।"

यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पुत्री का विवाह करने से पहले वर पक्ष की सम्पूर्ण जाँच–पड़ताल कर लेना चाहिए, उसके बाद ही विवाह करना चाहिए।

पिता–पुत्री का एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है –

शाल्मली के पिता नरेश और शाल्मली के संबंधों के बारे में सब जानते हुए भी वे उसे बदल नहीं सकते इसलिए शाल्मली को उपदेश देते हुए कहते है – "तु समझदार है बेटी, इस बहाव को संभाल सकती है। गोकुल झील बन जाता तो आम बात है, पर विपरीत दिशा में खड़े होकर किसी के साथ–साथ बहना मुश्किल। मुझे विश्वास है, सदा की भाँति तू कठिन डगर चुनेगी।"[7]

अतः लेखिका ने स्पष्ट किया है कि आमतौर पर यही सलाह या उपदेश हर माता–पिता अपनी बेटी को देते है। लेकिन अनमेल विवाह के बाद उसकी कोई मदद नहीं करता, उसे अपने हाल पर छोड़ देते हैं, चाहे इसका परिणाम बेटी की हत्या या आत्महत्या क्यों न हो?

'शाल्मली' उपन्यास में माता–पुत्री का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है – माता–पुत्री के संबंध में माँ का अपनी पुत्री के साथ बहुत गहरा संबंध होता है। माँ अपनी बेटी के विवाह को लेकर अधिक चिंतित होती है।

उपन्यास के अंतर्गत शाल्मली की माँ भी अपनी पुत्री के विवाह के विषय में चिंता प्रकट करती हुई अपने पति से चर्चा करती है – "जवान लड़की घर में बेठी हो, तो किस माँ को नींद आएगी।"[8]

उपर्युक्त संवाद में लेखिका ने पुत्री की शादी को लेकर माँ की चिंता को दर्शाया है किस प्रकार पुत्री के जवान होने पर माता–पिता की चिंताए बढ़ जाती है।

उपर्युक्त उपन्यास में सास–बहू का उदाहरण इस प्रकार है –

सास–बहू के संबंध में आज भी हमारे हिन्दू परिवारों में सास–बहू के आत्मीय प्रेम संबंध देखे जाते है, कुछ ऐसे ही संबंध शाल्मली उपन्यास में दर्शाए है।

उपन्यास के अंतर्गत शाल्मली की जेठानी के घर से जाने के बाद पता चला कि घर की बहुत सी चीजें गायब है। मगर उसने मुँह से एक शब्द भी न निकाला। जब शाल्मली की सास को पता चलता है तो वह शाल्मली से कहती है – "तेरा धैर्य मैं मान गई, बहू री। इसी को संस्कार कहते है, बेटी। तेरे माँ–पिताजी धन्य हैं।"[9]

प्रस्तुत उदाहरण में बहू का अपने परिवार के प्रति धैर्य, त्याग, बलिदान की भावना देखकर शाल्मली के प्रति सास का स्नेह व विश्वास बढ़ जाता है लेखिका ने सास–बहू के आपसी प्रेम को दर्शाया है।

संदर्भ सूची :–

1. समाजशास्त्र, भाग–1, डॉ. बी. एन. सिंह, डॉ. जनमेजयसिंह, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, सं. तृतीय, पृ. 120.
2. भारतीय सामाजिक व्यवस्था, डॉ. एम. एम. लवानिया, शशी के. जैन रिसर्च पब्लिकेशन, पृ. 111.
3. शाल्मली, नासिरा शर्मा, किताब घर प्रकाशन, सं. 2010, पृ. 146.
4. वही, पृ. 11.
5. वही, पृ. 13.
6. वही, पृ. 46.
7. वही, पृ. 46.
8. वही, पृ. 20.
9. वही, पृ. 98.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

जैविक खेती के लिए आवश्यक आदान : एक सामन्य विश्लेषण

आभा कुमारी
शोध छात्रा, अर्थशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

कृषि आदानों से अर्थ उन साधनों से है जिसकी सहायता से कृषि उत्पादन किया जाता है। इन साधनों में भूमि एवं श्रम के अतिरिक्त जल, खाद और उर्वरक, बीज, पौधा संरक्षण, भूमि संरक्षण, पशु धन तथा कृषि यंत्र एवं उपकरण जैसे साधन कृषि के आदान कहे जाते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के परम्परागत कृषि व्यवस्था में सिंचाई अथवा जल तथा पशु धन का विशेष महत्त्व था। रसायनिक उर्वरकों का पहले उत्पादन नहीं होता था। औद्योगिकरण के पश्चात् रसायनिक खादों का उत्पादन और प्रयोग बढ़ा है। अतः प्राचीन काल से लेकर आजादी के एक दशक बाद तक भारतीय किसान पुरातन बीजों को लगाकर पशु धन से प्राप्त होकर गोबर का प्रयोग करते थे। उत्पादन भले ही कम होता था, किन्तु मिट्टी की उर्वरता ज्योंकि त्यों बनी रहती थी। कृषि से प्राप्त अनाजों का उपभोग होता था तो उसमें नई–नई बीमारियाँ भी कम होती थी। गोबर और गोमूत्र से प्राप्त खादों के प्रयोग से मिट्टी का क्षरण नहीं होता था। अतः सामान्य रूप से परम्परागत कृषि में परम्परागत आदानों को प्रयुक्त कर उत्पादन किया जाता था और आज भी कमोवेश छोटे एवं सीमांत किसान इन आदानों का प्रयोग कर रहे थे। ये आदान निम्नांकित हैं –

1. जल :– कृषि के लिए जल सबसे अनिवार्यतम तत्त्व है। बिना जल के कृषि से उत्पादन होना असंभव है। साथ ही खेतों का जल उपयुक्त समय पर ही मिलना चाहिए अन्यथा उत्पति नही मिल पायेगा। सर चार्ल्स त्रिवेलियन ने कहा है कि "Irrigation is every thing in India, water is even most valuable than land." अर्थात् भारत में सिंचाई सब कुछ है। पानी भूमि से अधिक मूल्यवान है। इसके महत्त्व को बताते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था कि "सभी गाँवों में सिंचाई सुविधाएँ प्रदान करने से अधिक आवश्यक कार्य हो नहीं सकता है, क्योंकि सिंचाई ही वह आधार है जिस पर खेती निर्भर करती है। महात्मा गाँधी का यह कथन आज भी प्रासंगिक है क्योंकि भारत के अधिकांश हिस्सों में आधुनिक सिंचाई के साधन नहीं है। देश के 70 प्रतिशत क्षेत्र आज भी अहिंसा हैं। उन्हें मॉनसून पर निर्भर रहना पड़ता है, किन्तु मॉनसून की प्रकृति अनियमित और असामयिक है। कभी तो वर्षा अत्यधिक हो जाती है और कभी अति न्यून। कभी–कभी तो वर्षा होती ही नहीं और इस प्रकार सूखा पड़ जाता है।

भारत के कुछ फसलें ऐसी हैं जिनमें अधिक और नियमित पानी की आवश्यकता होती है। जैसे – पटसन, गन्ना, धान आदि। इन फसलों के अधिक उत्पादन के लिए वर्षा के जिल के अतिरिक्त कुछ परम्परागत साधन जैसे कुँआ, आहर, तालाब, झील आदि के साथ कृत्रिम साधनों का प्रयोग किया जाता है। कृत्रिम साधनों में नहर, नलकूप और जल संग्रहण कर पईन की व्यवस्था हैं। जिन सिंचाई साधनों को कृषि आदान के रूप में प्रयोग किया जाता है उनका प्रतिशत अलग–अलग है, जो कुल सिंचित क्षेत्र का द्योतक है।

सारणी संख्या : 1
जल आदान के क्षेत्रफल का प्रतिशत

क्र. सं.	विवरण	जल आदान से सिंचित क्षेत्र (प्रतिशत में)
1.	नहरों द्वारा सिंचाई	38.00
2.	तालाबों द्वारा सिंचाई	8.00
3.	ट्यूबवेल द्वारा सिंचाई	26.00

4.	कुओं/आहर/पईन द्वारा सिंचाई	20.00
5.	अन्य साधन	8.00

स्त्रोत : भारतीय अर्थशास्त्र, डॉ० मेमोरिया एवं जैन।

जल संसाधन जो सिंचाई का आवश्यक कृषि आदान है, उसमें नहरों की भागीदारी मात्र 38 प्रतिशत है, जबकि शेष 62 प्रतिशत तो भूमिगत जल और वर्षा से संग्रहित जल से सिंचाई होती है। नहर भी वर्षा पर निर्भर है, क्योंकि नदियों में बाँध बनाकर नहरें निकाली जाती है। नदियों के उद्‌गम क्षेत्र में जब वर्षा अधिक होती है तभी इनसे पानी मिल सकता है। पठारी क्षेत्रों में तो नहरों से सिंचाई बिल्कुल अंसभव है। वहाँ तालाब, कुँआ और झील ही कार्य करता है। अतः जल की कमी से उत्पादन अनियमितता आती है। बिना जल का कोई भी आदान कारगर नहीं हो सकता। इसलिए इस आदान को विकसित किया जाना चाहिए।

2. खाद एवं उर्वरक :– कृषि के लिए दूसरा महत्त्वपूर्ण आदान खाद एवं उर्वरक है। पहले भारतीय कृषक गोबर खाद का प्रयोग करते थे। पशुओं से प्राप्त गोबर को सड़ाकर खेतों में डाला जाता था और आज भी डाला जाता है। इस खाद में उत्पादकता बढ़ाने की अधिक शक्ति है। इससे मिट्टी की उर्वरता में भी वृद्धि होती है। धान, गेहूँ से अधिक इसका प्रभाव साग–सब्जियों के उत्पादन में देखा गया। जहाँ इसका प्रयोग हुआ है, वहाँ सब्जी का उत्पादन अधिक होता है। इनके प्रयोग से उत्पादित सब्जियों का स्वाद भी कुछ और होता है। लेकिन आज गोबर खाद से अधिक रसायनिक खादों का प्रयोग अधिक होने लगा है। भारत के तृतीय योजना के बाद से रसायनिक उर्वरक की खपत बढ़ी है। कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से कृषि उत्पादन और उत्पादकता दोनों में आशातीत वृद्धि हुई है। विद्वानों का मत है कि पर्याप्त मात्रा में खाद का प्रयोग करने से उत्पादन की मात्रा तिगुनी तक की जा सकती है। यही कारण है कि रसायनिक खादों के उपयोग में तेजी से वृद्धि हुई है। 1960–61 में जहाँ प्रति हेक्टेयर 1.9 किलोग्राम रसायनिक खाद का प्रयोग होता था, जो अब बढ़कर 67 किलोग्राम हो गया है। इसकी खपत दिनानुदिन बढ़ती जा रही है, क्योंकि कृषि का मशीनीकरण होने से पशु धन में कमी आ गई हैं अब गोबर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है।

लेकिन गोबर खाद की कमी और रसायनिक उर्वरकों के अधिक प्रयोग से कृषि को हानि हुई है। सबसे पहले तो जिन खेतों में रसायनिक उर्वरक अधिक मात्रा में डाले जाते हैं उनकी उर्वरक क्षमता का अधिकतम होकर गिरने लगती है। उनमें अधिक मात्रा में रसायनिक उर्वरक दिया जाता है तो उपज बढ़ेगी अन्यथा कम हो जायेगी। बहुत किसान ऐसे हैं जिनके पास वित का अभाव है। वे उचित समय पर उर्वरक दे नहीं पाते जिसे उत्पादकता में कमी आ रही है। दूसरी बात यह है कि अधिक रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी की प्रकृति बदल रही है। उसकी उत्पादन क्षमता घट रही है। पंजाब और हरियाणा में मिट्टी का स्वभाव बदल रहा है जिसे खेतों से प्रभावित मिट्टी को हटाने का कार्य किया जा रहा है। तीसरी बात यह है कि रसायनिक उर्वरकों से उत्पादित अनाज और सब्जियाँ जल्दी सड़ जाती है, जिनके खाने से अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो रही है। उत्पादकता बढ़ाने का यह कारगर आदान तो है किन्तु इसकी हानि को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज कृषि वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि रसायनिक उर्वरकों की अपेक्षा गोबर खाद का अधिक प्रयोग कर जैविक खेती की जाय। गोबर में मृदा बढ़ाने की शक्ति तो है ही, साथ ही इससे अधिक केंचुए पैदा होते हैं जो पौधों का पोषण करते हैं और रसायनिक उर्वरकों से उत्पन्न दुष्प्रभावों को भी कम करते हैं। इसके प्रयोग से उत्पन्न अनाज और सब्जियों स्वाद और शक्ति बढ़ती है। इसलिए इस आदान की उपयोगिता बढ़ गई है।

3. बीज :– कृषि के लिए तीसरा आदान बीज है। अच्छे बीज कृषि उत्पादन में वृद्धि करते हैं। पहले किसान स्वयं बीजों का संग्रहण करते थे। पुष्ट अनाजों को छाँटकर बीजों को रखने

के बाद ही अनाज को डंठलों से अलग करते थे और उसे पुआल आदि से बाँधकर सुरक्षित रख देते थे। सब्जियों एवं फलों के बीजों को उनके पकने के बाद सुखा दिया जाता था। लेकिन वैज्ञानिक कृषि में बीजों को प्रगणित किया जाता है। उत्तम और कम दिनों में अधिक उपज देने वाली बीजों की खोज कर ली गई है। धान और गेहूँ के बीजों का इजाद किया गया है। धान की नई प्रजातियों की खोज कर ली गई है। धान के बीजों में ताय चुंग, सीता, मंसूरी, जया, पद्मा, सोनम, सोनाचूर आदि के बीजों का प्रयोग कर अधिक उत्पादन किया जा रहा है। इस तरह गेहूँ में लाल बहादुर, पंजाब, शर्वती सोनारा, लरमारो जो आदि बीजों की खोज की गई है। चना में सधा बीज से अधिक उत्पादन किया गया है। गन्न में बी.टी. 52 तथा शंकर मक्का के बीजों से उत्पादन को दुगुना कर दिया है। इसके लिए 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम तथा 1969 में राष्ट्रीय फार्म निगम स्थापित किये गये हैं। 1976 के राष्ट्रीय बीज कार्यक्रम के अन्तर्गत नौ राज्यों आंध्र प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, कर्नाटक, राजस्थान व उत्तर प्रदेश में राज्य बीज निगम स्थापित किये गये हैं। इनके द्वारा बीजों का वितरण किया जाता है। प्रत्येक जिला के प्रखंडों में कृषि विभाग द्वारा नये–नये बीजों को किफायती दर पर किसानों को बीज दिया जाता है। नये बीजों के प्रयोग से कृषि उत्पादक में बहुत अधिक वृद्धि हुई है, जिसका प्रभाव हरित क्रांति में देखा गया। बीजों के कमाल से ही भारत ने खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता प्राप्त कर लिया। अन्य आदान जैसे जल और उर्वरक की पर्याप्तता के बावजूद भी अगर बीज अच्छे नहीं हों तो कृषि उत्पादन नहीं हो सकता। अतएव बीज एक प्रभावकारी आदान माना जाता है।

4. पौध संरक्षण :– कृषि आदानों में पौध संरक्षण भी एक महत्त्वपूर्ण आदान है। यदि फसलों को कीटाणुओं और रोगों से बचाकर किया जाय तो इससे उत्पादन को बहुत बड़ी हानि होती। विद्वानों का अनुमान है कि भारत में कीड़े–मकोड़ों और चूहे द्वारा फसल को 2000 करोड़ रुपये से लेकर 5000 करोड़ रुपये तक की हानि की जाती है। अतः पौध संरक्षण के लिए कीटनाशक दवाओं को काम में लाया जाता है। केन्द्रीय सरकार भी हवाई सतही दवाओं के छिड़काव से खेतों की रक्षा करती है। इसके लिए केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत कीट निगरानी एवं वनस्पति रक्षण यूनिट है जिनका काम टिड्डियों और फसलों को रोगों से खेतों का बचना है। हवाई जहाज के जरिए खेतों में दवाईयों के छिड़काव का पायलटों के प्रशिक्षण देने के लिए शीघ्र ही हैदराबाद में एक अकादमी स्थापित की गई है, जो एशिया में अपने किस्म की पहली संस्था है। इस समय विश्व में इंगलैण्ड, अमरीका, फ्राँस, आस्ट्रेलिया तथा सोवियत संघ में इस प्रकार की अकादमियाँ हैं।

5. भू–संरक्षण अधिनियम :– कृषि विकास के आदानों में जल, खाद, बीज, पौध संरक्षण के साथ–साथ भू–संरक्षण एवं उद्धरण को भी रखा जाता है। परीक्षणों द्वारा कृषि वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भूमि पर लगातार खेती करने से उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। यह समस्या और बढ़ती जा रही है, क्योंकि लागातर रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग और लगातार गेहूँ की फसल उगाने से पंजाब के खेतों की उर्वरा शक्ति का ह्रास हो चुका है। वहाँ खेतों से एक फीट तक के मिट्टी में उर्वरा शक्ति नहीं है। लोग उसकी कटाई कर रहे हैं। इस प्रकार के भूमि अपक्षय की घटनाएँ हरियाणा में भी देखने को मिलती है। दूसरी बात यह है कि वर्षा से जब भूमि के उपरी करण उड़ जातते है तो इसके भूमि का कटाव अथवा भूमि–करण कहते हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि भूमि अपक्षय और भूमिकरण या कटाव को रोका जाय। इसके लिए भूमि को कुछ समय के लिए बिना खेती छोड़ा जा सकता है या गोबर खाद को फिर से खेत में देकर उसे पुनः शक्तिमान किया जा सकता है। भूमि संरक्षण के लिए भारत सरकार ने सातवीं योजना में 740 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी जिसे बढ़ाकर 1230 करोड़ रुपये कर दी गई है। केन्द्रीय सरकार ने एक केन्दीय भूमि संरक्षण मंडल (Central Soil Conservation Board) की स्थापना की है और ऐसे ही मंडल राज्यों में भी स्थापित किये गये हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक 354 लाख हेक्टूयर भूमि को भू–संरक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत लाया जा चुका

है। इसी प्रकार प्रत्येक साल नदियों में बाढ़ आने से किनारे की भूमिका कटाव तेजी से हो रहा है, जिसे अपरदन कहते हैं। इसे रोकने के लिए बाँधों का निर्माण किया जा रहा है तथा नदियों के किनारे पेड़–पौधों को लगाया जा रहा है।

6. पशु धन :– भारतीय कृषि आदानों में पशु धन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह कृषि विकास का एक साधन है। एक ओर पशुओं से हल द्वारा खेत की जुताई की जाती है और दूसरी ओर इनसे प्राप्त गोबर तथा मूत्र से खेतों में खाद दी जाती है। इसके साथ पशु धन को उपयोग अनाजों को मंडियों तक ले जाने का काम किया जाता है। बैलगाड़ी का प्रचलन हमारे देश में बहुत था। बैलगाड़ी ही ग्रामीणा क्षेत्रों में यातायात का प्रमुख साधन था। अर्थशास्त्री डॉ० गोरखनाथ सिंह ने इसके महत्त्व को अपनी पुस्तक Role of Bullock Cart in Indian Agriculture में काफी उजागर किया है। कृषि अर्थशास्त्र के लेकख शिवनारायण गुप्त ने भी पशु धन के उपयोगिता के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा है कि पशु धन भारतीय परम्परागत कृषि के आधार है। इनसे कुओं से पानी भी निकाला जाता है, गुड़ बनाने के लिए गन्ने की पेराई का भी कार्य किया जाता रहा है। पशु धन से प्राप्त गोबर आदि से खेतों में खाद दिया जाता था और आज भी जिन खेतों में गोबर खाद दिया जाता है, उसकी उर्वरा शक्ति दुगुनी बढ़ जाती है। विद्वानों का अनुमान है कि पशु धन कुल उत्पादन में 43 प्रतिशत तक की वृद्धि करते हैं।

यद्यपि कि ट्रैक्टरों, मशीनों, मोटरों एवं पम्पिंग सेटों के गाँव में लग जाने के बावजूद भी पशु धन का महत्त्व कम नहीं हुआ है। अनुमान है कि प्रति वर्ष पशु धन से 110 करोड़ टन गोबर की प्राप्ति होती है जिससे 22 करोड़ टन खाद मिलता है। लेकिन आज पशु धन का ह्रास होते जा रहा है और दूसरी ओर इनके माँस का व्यापक रूप से व्यापार हो रहा है। भेड़, बकरी, ऊँट, गाय और भैंस आदि को काटा जा रहा है। यह बड़ी ही चिंतनीय विषय है। पशु धन की कमी से गोबर मिलना मुश्किल हो गया है।

7. कृषि यंत्र एवं उपकरण :– परम्परागत कृषि में हल, रहट, मोट, सैर, करीन, लट्ठा कुंडी आदि का व्यवहार होता था, किन्तु अब इनका स्थान कृषि यंत्रों ने ले लिया है। कृषि यंत्रीकरण का अर्थ भूमि पर यांत्रिक शक्ति द्वारा उन क्रियाओं के सम्पन्न करने से है, जो समान तथा बैलों, घोड़ों एवं अन्य पशुओं या मानवीय श्रम द्वारा की जाती हैं। खेतों की जुताई और बोआई जो हल से होता था, उसके स्थान पर ट्रैक्टरों का प्रयोग हो रहा है। फसल काटने और दवनी का कार्य हार्वेस्टर और थ्रैसर मशीन से किया जा रहा है। सिंचाई बैलों और कुँओं से न करके अब विद्युत या डीजल चालित पम्पसेटों से की जा रही है। इस तरह से पुराने कृषि औजारों जैसे हलों, फावड़ा, खुरपी, खनती के स्थान पर आधुनिक मशीनों और उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इसके पक्षधर कहते हैं कि कृषि में मशीनों के प्रयोग से प्रति हेक्टेयर उत्पादन में वृद्धि होती है, उत्पादन लागत में कमी आती है, व्यापारिक खेती का विकास होता है तथा रोजगार बढ़ता है।

परन्तु बड़े पैमाने पर कृषि यंत्रों का उपयाग भारत में संभव नहीं है। यहाँ जोतों के आकार बहुत छोटे हैं, जिनमें ट्रैक्टर आदि का प्रयोग नहीं होता है। अधिकांश किसान छोटे और सीमांत हैं। उनके पास पूँजी नहीं है कि वे कृषि यंत्रों को खरीद सकें। यंत्रीकरण के लिए डीजल–पेट्रोल की आवश्यकता होती है, जिनका देश में अभाव है। इनकी कीमतें भी इतनी अधिक है कि छोटे किसान इसे खरीदने में सक्षम नहीं हैं। अन्ततः यह मानकर चला जाय कि पशु शक्ति बड़ी मात्रा में है। यदि कृषि का यंत्रीकरण किया जाय तो करोड़ों पशु बेकार हो जायेंगे। इन्हें जीवित रखने की व्यवस्था पर करोड़ों रुपये खर्च करने होंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषि विकास के लिए आदानों की भूमिका बहुत अधिक है। आधुनिक कृषि व्यवस्था में इनका प्रयोग कर उत्पादकता में तो वृद्धि की जा सकती है, किन्तु इनके भावी परिणाम भयंकर होंगे। जैसे रसायनिक उर्वरकों को लिया जाय तो उपज में वृद्धि के लिए इनका अधिक से अधिक हो तो यह हो सकता है किन्तु लगातार ऐसे उर्वरक देने से भूमि का क्षरण होगा तथा

कृषि विकास टिकाऊ नहीं होगी। इसी तरह जिन बीजों का प्रयोग कर उत्पादन बढ़ाने की बात की जा रही है उनमें पौष्टिकता नहीं हैं। इसलिए जैविक खेती के लिए उपर्युक्त आदानों की आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची :–

- भालेराव, एम० एम० : भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1977
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, 1943–44 का परियोजना प्रतिवेदन।
- शिवरामन समिति, ग्रामीण कम्पोस्ट परियोजना, 1976
- बंसिल : 'गोबर का सूखा भार एवं अपव्यय' (डॉ० एम० एम० भालेराव की पुस्तक भारतीय कृषि अर्थशास्त्र में उद्धृत), 1977
- राष्ट्रीय परिषद्, व्यावहारिक आर्थिकी अनुसंधान, नई दिल्ली।
- लाल, एस० एन० एवं लाल, एस० के० : भारतीय अर्थव्यवस्था – सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, शिवम पब्लिशर्स, इलाहाबाद, 2018
- जैव तकनीक एवं आनुवंशिक इंजीनियरिंग : अनुसंधान रिपोर्ट, 2016
- नेशनल प्रोजेक ऑन आर्गेनिक फार्मिंग, 2004
- परम्परागत कृषि विकास योजना, 2016
- राष्ट्रीय बागवानी मिशन, 2005
- हिन्दुस्तान (समाचार–पत्र), 26 दिसम्बर, 2019

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम : उद्देश्य एवं विशेषताएँ

चन्द्रेश कुमार
शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) भारत सरकार का एक प्रमुख बेरोजगारी उन्मूलन अधिनियम है, जो सीधे–सीधे गरीबों की जिंदगी से जुड़ा है और स्थायी ग्रामीण विकास को प्रोत्साहन देता है। यह अधिनियम विश्व में अपनी तरह का पहला अधिनियम है, जिसके तहत ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार की गारंटी दी गई है। इसका मकसद है – ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना। इसके तहत हर ग्रामीण परिवार (गृहस्थ) को एक वित्त वर्ष में 100 दिन का रोजगार या बेरोजगारी भत्ता दिये जाने की गारंटी प्रदान की गई है। यह रोजगार शारीरिक श्रम या मजदूरी के संदर्भ में है और उस वयस्क व्यक्ति को प्रदान किया जाता है, जो मजदूरी रोजगार की माँग करता है। इस अधिनियम का दूसरा लक्ष्य यह है कि इसके तहत स्थायी विकास का सृजन किया जाए और ग्रामीण निर्धनों की आजीविका के आधार पर मजबूत बनाया जाए। इस अधिनियम के अन्तर्गत जो योजनाएँ बनाई जाती हैं, वे स्थायी ग्राम–विकास से भी जुड़ी होती हैं, जिससे कि ग्राम–विकास के साथ–साथ स्थानीय वयस्क बेरोजगारों को रोजगार भी सतत मिलता रहे।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) का आधार अधिकार और माँग को बनाया गया है, जिसके कारण यह पूर्व की इसी तरह के अन्य अधिनियमों से भिन्न हो गया है। अधिनियम के बेजोड़ पहलुओं में समयबद्ध रोजगार गारंटी और 15 दिन के भीतर मजदूरी का भुगतान जैसी विशेषताएँ शामिल हैं। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे रोजगार प्रदान करने में कोताही न बरतें, क्योंकि रोजगार प्रदान करने के खर्च का 90 प्रतिशत हिस्सा केन्द्र वहन करता है। इसके अलावा यह सुनिश्चित किया गया है कि रोजगार शारीरिक श्रम (मजदूरी) पर आधारित हो, जिसमें किसी का कोई हस्तक्षेप नहीं हो।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम ग्रामीण गरीबों के जीवन से जुड़ा है और उनके जीवन–स्तर को उठाने के लिए कृतसंकल्प है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य मजदूरी रोजगार को बढ़ाना है। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ाने, सूखा राहत कार्य, वन–उन्मूलन और मिट्टी के कटाव को रोकने जैसे कार्यों द्वारा राष्ट्रीय विकास की ओर लोगों को प्रोत्साहित किया जाता है। नरेगा संसार का पहला ऐसा अधिनियम है, जो मजदूरी रोजगार की गारंटी देता है। नरेगा के अन्तर्गत गारंटीयुक्त मजदूरी रोजगार प्राप्त कर सकता है। उसकी मजदूरी का भुगतान 15 दिन में हो जाता है। नरेगा के अन्तर्गत वित्तीय खर्च का 90 प्रतिशत हिस्सा केन्द्र सरकार वहन करती है। इसमें महिलाओं को 33 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित की गई है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) 7 सितम्बर, 2005 को अधिसूचित हुआ था और वित्तीय वर्ष 2006–07 में लागू हुआ।

मुख्य उद्देश्य :– राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के उन अकुशल मजदूरों के लिए प्रति वर्ष 100 दिन की मजदूरी की गारंटी देना है, जो मेहनत–मजदूरी करके अपने परिवार को रोजी–रोटी चलाते हैं। इसके मुख्य उद्देश्य हैं–

- निर्धन ग्रामीणों को रोजगार पाने के लिए कानूनन मजबूत करना।
- समाज के असुरक्षित समूहों के पास रोजगार के वैकल्पिक स्रोत न होने की स्थिति में नरेगा के अन्तर्गत रोजगार उपलब्ध कराना।
- प्रजातंत्र को ग्राम–स्तर से ही मजबूत करना तथा शासन में पारदर्शिता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करना।
- ऐसे कार्य करना, जिनके माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन सुदृढ़ हो, जो कि सूखा, वनों की कटाई और मिट्टी के कटाव जैसे

अवांछित कारणों को दूर करते हैं और सतत विकास को प्रोत्साहन देते हैं।

इन उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर 2 फरवरी, 2006 को नरेगा की शुरूआत देश के 200 जिलों में हुई और वित्त वर्ष 2007–08 में 130 जिले इसमें और शामिल कर लिये गये। देश भर के बाकी जिले 1 अप्रैल, 2008 को इसमें शामिल किये गये। इस प्रकार देश भर में विस्तार हो गया जिसकी अपनी विशेषताएँ हैं।

मुख्य विशेषताएँ :–

• गाँवों में रहनेवाले परिवारों के वयस्क सदस्य, जो अकुशल मजदूर के रूप में कार्य करना चाहें, स्थानीय ग्राम पंचायत में पंजीयन के लिए आवेदन कर सकते हैं।

• समुचित जाँच–पड़ताल के बाद ग्राम पंचायत ऐसे लोगों को 'जॉब कार्ड' देती है। यह जॉब कार्ड मुफ्त में बनाया जाता है। इसमें नरेगा के अन्तर्गत कार्य करनेवाली किसी परिवार के सभी वयस्कों के फोटों लगाए जाते हैं

• जॉब कार्ड आवेदन–प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर बनाकर दिया जाता है।

• जॉब कार्डधारक काम पाने के लिए ग्राम पंचायत को आवेदन दे सकता है। उसे न्यूनतम 14 दिन की मजदूरी देने का नियम है।

• ग्राम पंचायत लिखित रूप में प्राप्त आवेदन के बाद तिथि सहित पावती जारी करती है, जिसके 15 दिन के भीतर जॉब कार्डधारक को गारंटी से मजदूरी रोजगार प्रदान किया जाता है।

• आवेदन की तिथि से 15 दिन के भीतर यदि रोजगार प्रदान नहीं किया जाता तो कार्ड धारक को नियमानुसार बेरोजगार भत्ता प्रदान किया जाता है।

• कार्डधारक को मजदूरी रोजगार उसके गाँव की 5 कि.मी. की सीमा के भीतर उपलब्ध कराया जाता है। यदि मजदूरी 5 कि.मी. से दूर उपलब्ध कराई जाती है तो परिवहन व्यय के लिए मजदूरी से 10 प्रतिशत अधिक अतिरिक्त भुगतान किया जाता है।

• पुरुष एवं महिला को समान मजदूरी दी जाती है।

• मजदूरी का भुगतान राज्य के कृषि मजदूरों के लिए तय 'न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948' के अनुसार किया जाता है। इसके अभाव में केन्द्र द्वारा अधिसूचित मजदूरी 60 रुपए प्रति दिन से कम न हो।

• मजदूरी प्रतिदिन की दर से अथवा नग दर के अनुसार दी जाती है। मजदूरी का भुगतान साप्ताहिक रूप से किया जाता है। यह भुगतान किसी भी दशा में 15 दिन से आगे से नहीं बढ़ाया जा सकता।

• पंजीकृत लोगों और मजदूरी के लिए कुल आवेदकों में से न्यूनतम एक–तिहाई स्थान महिलाओं के लिए तय किये गये हैं।

• कार्यस्थल पर शिशु गृह, पेयजल और छप्पर उपलब्ध कराया जाता है।

• गाँवों के लिए परियोजनाएँ ग्राम सभाएँ मंजूर करती हैं और जिला पंचायत उनका अनुमोदन करती है।

• मंजूर परियोजना का न्यूनतम 50 प्रतिशत कार्य ग्राम पंचायत अपनी देखरेख में कराती है।

• जारी कार्यों में मुख्यतः जल एवं मृदा संरक्षण, वनरोपण और भूमि विकास से जुड़ी गतिविधियाँ शामिल होती हैं।

• कार्य में ठेकेदारों और मशीनों को शामिल करने की मनाही है।

• सामाजिक लेखा परीक्षा जैसी पार्श्व जन जवाबदेही प्रणालियाँ लागू हैं। सामाजिक लेखा परीक्षा कम–से–कम छह माह में एक बार की जानी अपेक्षित है। यह लेखा परीक्षा ग्राम सभा करती है।

• पारदर्शिता एवं जवाबदेही के प्रति प्रतिबद्धता को बनाए रखने के लिए वेब आधारित प्रबंधन सूचना प्रणाली से नागरिक मस्टर रोल (कर्मियों की उपस्थिति एवं मजदूरी के भुगतान संबंधी दस्तावेज) देख सकते हैं।

• नरेगा कर्मियों को बीमा कवर हेतु 'जन श्री बीमा योजना' की श्रेणी में रखा गया है।

• केन्द्र सरकार राज्य सरकारों की मजदूरी के इच्छुक लोगों को डाकघर एवं बैंक खातों के माध्यम से मजदूरी का भुगतान करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। फलतः वित्त वर्ष 2008–09 में मजदूरी के भुगतान के लिए 6.85 करोड़ नरेगा बैंक एवं डाकघर खाते खोले गये।

• नरेगा मजदूरी रोजगार की वैधानिक गारंटी देता है।

• कार्डधारक अपनी सुविधानुसार समय और दिन का चुनाव कर सकता है।
• नरेगा के अन्तर्गत माँग के अनुसार रोजगार की रूपरेखा तैयार की जाती है।

मनरेगा में सतर्कता एवं निगरानी :– नरेगा के साथ व्यापक पारदर्शी जवाबदेही प्रणालियाँ जुड़ी हुई हैं –

(i) जॉब कार्ड और उसमें दर्ज सूचनाएँ, रोजगार के लिए लिखित आवेदन, मस्टर रोल, माप–पुस्तिका (या डायरी) और परिसंपत्ति रजिस्टर।

(ii) रोजगार आवेदन की स्वीकृति, तिथि के साथ पावती जारी करना, समय–सीमा के भीतर रोजगार, मजदूरी का भुगतान, कार्यस्थल पर, नागरिक सूचना परिषद्, निगरानी एवं जाँच समिति; प्रखंड, जिला एवं राज्य स्तर पर नियमित जाँच और सामाजिक लेखा–परीक्षा।

मनरेगा के प्रभाव :– नरेगा लागू होने के शुरूआती वित्त वर्ष 2006–07 में 200 जिलों के लगभग 2.10 करोड़ परिवारों को रोजगार दिया गया और 90.5 करोड़ श्रम दिवस सृजित किये गये। वर्ष 2007–08 में 330 जिलों में 3.39 करोड़ परिवारों को रोजगार दिया गया तथा 143.59 करोड़ श्रम दिवस सृजित किये गये। वर्ष 2008–09 में देश भर में 4.49 करोड़ परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया तथा 216.01 करोड़ श्रम दिवस सृजित किये गये। नरेगा के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर दी जाने वाली मजदूरी 65 रुपये (वित्त वर्ष 2006–07) से बढ़कर 2008–09 में 84 रुपये हो गई है। वर्ष 2007–08 में नरेगा के तहत 10,738.47 करोड़ रुपये मजदूरी के रूप में दिये गये, जो वित्त वर्ष 2008–09 में बढ़कर 18,155.20 करोड़ रुपये हो गया। इस प्रकार भारत में ग्रामीण निर्धनों के जीवन–स्तर में सुधार हुआ है। नरेगा के तहत कामगारों में वित्त वर्ष 2007–08 में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति जैसे समूहों की भागीदारी अधिक (57 प्रतिशत) थी। वर्ष 2008–09 में इनकी भागीदारी 55 प्रतिशत रही। महिलाओं की भागीदारी भी तय न्यूनतम 33 प्रतिशत भागीदारी से अधिक रही। वर्ष 2007–08 में महिलाओं की भागीदारी 43 प्रतिशत थी, जो वर्ष 2008–09 में बढ़कर 48 प्रतिशत हो गई।

इस प्रकार ग्रामीण समुदाय को रोजगार देने एवं आय में वृद्धि के लिए मनरेगा एक वरदान है। यह प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर आधारित एक जीवंत मिसाल है। यद्यपि कि इसका कार्यान्वयन 2006–07 से शुरू किया गया जिसमें 8 लाख कार्यक्रम रोजगार से संबंधित थे, किन्तु अभी यह इतना व्यापक कार्यक्रम में विस्तीर्ण है जिसके द्वारा रोजगार ही नहीं मिलेगा बल्कि आर्थिक विकास को भी बढ़ावा मिलेगा। जल संरक्षण, सिंचाई, सुखा निरोध, बाढ़ नियंत्रण, नाली, आहर, पोखर निर्माण के साथ कच्ची सड़क तथा पिंडों का कार्य मनरेगा के द्वारा पंचायत स्तर पर हर गाँवों में किया जा रहा है। इसका उद्देश्य आजीविका के लिए रोजगार देना ही नहीं, बल्कि ग्रामीण संसाधनों का पुनर्सृजन है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि होगी और सिंचाई सुविधाएँ बढेंगी तो भारत खुशहाली की गीत गायेगा। अतः भारत सरकार का मनरेगा जैसा कार्यक्रम एक सराहनीय कदम है।

संदर्भ–सूची :–

- शर्मा, महेश : महात्मा गाँधी नरेगा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011
- सिंह, सीताराम : नरेगा, ए० पी० एच० पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2011
- पंकज, अशोक कुमार : 'इन्स्टीच्यूशन एण्ड मैकेनिज्म ऑफ इप्लीमेंटेशन ऑफ नरेगा', इन्स्टीच्यूट ऑफ हुमैन डेवलपमेंट, नई दिल्ली, 2008
- गोस्वामी, अनुपम : 'जॉब्स फॉर द पुअर', बिजनेश इण्डिया, फरवरी 10, 2008
- रूद्र दत्त : 'डीसमल एक्सपीरिएन्स ऑफ नरेगा', मेनस्ट्रीम, अप्रैल 12, 2008
- खाँ, अमीर उल्हा एवं सलूजा, एम० आर० : 'इम्पैक्ट ऑफ द एन० ई० जी० पी० ऑन रूरल लीवलीहूड', इण्डिया डेवलमपेंट फाउण्डेशन इन दिल्ली, डाउनलोड फ्रॉम इंटरनेट।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

कामकाजी महिलाओं पर घरेलू हिंसा का प्रभाव : एक आंकलन

निकहत प्रवीण
NET (U.G.C), शोधप्रज्ञा, समाजशास्त्र विभाग, बी.एन. कॉलेज, पटना

नारी ही हमारे समाज और राष्ट्र की निर्माता है। नारी से ही समाज की रचना हुई है। इसलिए नारी के सम्मान और अधिकार की रक्षा करना समाज का दायित्व है। समाज में नारी हिंसा एक बहुत बड़ी समस्या है जो स्वतंत्रता के पहले से चली आ रही हैं और इसका रूप और भी व्यापक होता जा रहा है। हमारा इतिहास गवाह है कि महिला को लंबे समय से यातना, दंड, अपमान से शोषित होती रही हैं। यदि हम प्राचीन काल से महिला के घरेलू हिंसा के पन्ने पलटते हैं तो पाते हैं महिलाओं पर प्राचीन काल में अनेक बंधन थे एवं बर्बर अत्याचार होते रहे हैं। आधुनिक काल में युवा महिला की स्थिति बद से बदतर हो गयी है समय–समय पर भारत के संसद के द्वारा अधिनियम बनते रहे हैं। 2005 में घरेलू हिंसा से मुक्ति पाने के लिए महिलाओं के लिए संरक्षण अधिनियम बना इसके अन्तर्गत कई धारा है पर महिला समाज परिवार, बच्चे, लोक–लाज के जलते इस कानून का उपयोग कम करती है।

घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं की संख्या लगातार बढ़ रही है आज की महिला किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा की शिकार होती है। आँकड़ा बताता है कि 38 प्रतिशत विवाहित महिला घरेलू हिसां की शिकार होती है। 19 प्रतिशत महिला दहेज के लिए मारी जाती हैं वहीं 4 प्रतिशत युवा महिला प्रतिदिन पति व रिश्तेदारों द्वारा अपमानित होती है, जिसमें 6 प्रतिशत शहरी क्षेत्र और 27 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ हैं।

मानव संसाधन मंत्रालय के महिला एवं बाल विकास के प्रतिवेदन के अनुसार भारत में प्रत्येक 54 मिनट में एक महिला का बलात्कार, 15 मिनट में छेड़छाड़, 26 सेकेण्ड में बदसलूकी, 102 मिनट में दहेज के कारण हत्या होती है। एक अध्ययन के प्रति हिंसा या उत्पीड़न एक अस्वभाविक परम्परा बन जाती है।

घरेलू हिंसा का माहौल स्वयं के घर में ही बनता है चाहे वह पति के द्वारा हो, सास के द्वारा हो ननद के द्वारा हो या परोक्ष रूप में माता–पिता हो या परिवार का अन्य कोई भी सदस्य हो सकता है। घरेलू हिंसा का प्रमुख कारण पुरुषीय अहम और तानाशाही, अशिक्षा, गरीबी, दहेज संबंधी प्रताड़ना, पुरुष प्रधान सामाजिक विधान, कानून का प्रभावी नहीं होना और गिरता मानवीय मूल्य आदि है।

संविधान में महिला को समानता का अधिकार मिला है तथा महिला आंदोलन का भी छिटपुट प्रयास किया गया। इस आंदोलन का असर यह हुआ कि कुछ कानून में बदलाव हुआ। इन सब बातों का क्या प्रभाव हुआ युवा महिला उत्पीड़न को कितनी राहत मिली यह एक विचारणीय विषय है।

वर्तमान से प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी। वह सम्मानजनक जीवन जीती थी, उन्हें हर क्षेत्र में आगे बढ़ने का मौका मिलता था।

मध्यकाल और आधुनिक काल में तो महिलाओं की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है।

हम महिलाओं की समस्या में आज मुख्य रूप से बलात्कार, छेड़छाड़ दहेज हत्या, वेश्यावृति, कन्या भ्रूण हत्या, मानवाधिकार का हनन और भी कई कारण है, जैसे–पितृसत्तात्मक व्यवस्था, समाजीकरण की प्रक्रिया आदि हैं।

महिला हिंसा का प्रमुख कारण महिला का अशिक्षित होना है घरेलू हिंसा हमारे घर में किसी सदस्य के द्वारा या नाते–रिश्तेदार के द्वारा होता है।

घरेलू महिलाओं में हिंसा के प्रमुख घटक देखे जा सकते हैं :–

1. **शारीरिक हिंसा** : यदि किसी व्यवहार से संबंधित व्यक्ति पर शारीरिक कष्ट या उसके स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ता है उसे शारीरिक हिंसा कहते हैं।
2. **भाव–भंगिमा** : किसी मर्द की ऐसे नजर (भाव) देखकर महिला शर्मिंदा महसूस करे जैसे–मर्द गंदे तरह से इशारा ही करता है तो इसे भाव– भंगिमा हिंसा कहते हैं।
3. **यौन हिंसा** : वैवाहिक जीवन में भी पति द्वारा जोर–जबर्दस्ती शारीरिक संबंध बनाने को यौन–हिंसा कहते हैं। ये कोई अन्य पुरुष भी हो सकता है। यह युवा महिला पर होने वाला मर्मादित करनेवाला हिंसा है।

4. **मौखिक या भावनात्मक हिंसा** : यदि कोई व्यक्ति ऐसी बात बोलता है जिसमें महिला को नीचा दिखाता है, जैसे–लड़का, जन्म नहीं दे सकती है। माँ नहीं बन सकती है आदि।
5. **आर्थिक हिंसा** : वित्तीय एवं आर्थिक मदद से युवा महिला को अलग करना घरेलू हिंसा का एक प्रमुख हिस्सा है। पति पैसे को हथियार बनाकर महिला की जरूरतों को नजर अंदाज करता है।

घरेलू हिंसा का स्वरूप :–

1. **वेश्यावृति** : जे०एच० गैगनॉन के अनुसार–"वैश्यावृति अपेक्षाकृत बिना किसी भेदभाव के आधार पर ऐसी यौनक्रिया की स्वीकृति देता है जिसकी कीमत रुपए या वस्तु के रूप में चुकायी जाती है यह भुगतान एक खास यौन क्रिया के लिए की जानेवाला भुगतान है।
2. **दहेज हत्या** : दहेज प्रथा के अन्तर्गत शादी के समय कन्या पक्ष, वर पक्ष को सामान, बर्त्तन, जमीन, सोना देते थे। प्राचीन काल में दहेज कन्यादान को माना जाता था पर अब इसकी परिभाषा बदल गई है। कन्या को कितना भी पढ़ा–लिखा दीजिए कन्या चाहे जितना भी गुणी हो फिर भी वर पक्ष दहेज के रूप में सामान/सम्पत्ति दहेज के रूप में बिना लिए विवाह सम्पन्न नहीं हो सकता है।
3. **यौन उत्पीड़न** : यह एक ऐसा उत्पीड़न है जो दूसरे पक्ष को भयभीत करता है उसे बदनाम करता है दबाव डालता है। राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा दिये गये सर्वेक्षण के अनुसार 50 प्रतिशत महिला यौन–उत्पीड़न की शिकार होती है। महिलाओं में सबसे ज्यादा अपराध छेड़छाड़ की होती है।

डॉ० राम अहूजा के मतानुसार–"महिला उत्पीड़न के अन्तर्गत घरेलू हिंसा महिलाओं के प्रति की गई हिंसा के प्रमुख कारण है। स्त्रियों को मारना, पीटना, उनको जलाना, दहेज के लिए प्रताड़ित करना, उनके साथ लैंगिक दुर्व्यवहार करना आदि प्रमुख है। इस तरह का अत्याचार शिक्षित महिलाओं की अपेक्षा अशिक्षित महिलाओं में अधिक होती हैं।

सीवार्ड के कथनानुसार–"उपलब्धियों के क्षेत्र में पुरुषों का एकाधिकार कायम रखने के लिए महिलाओं के लिए जैविक आधार पर आधारित कार्यों एवं सामाजिक योगदान के मार्ग में अड़चन खड़ी करके अपर्याप्त नौकरी में जनसंख्या के अर्थ प्रतिबंधित भाग को अलग रखा जाता है।

एम०एम० अंसारी के मतानुसार–"बलात्कार महिला के साथ किया गया क्रूरतम उत्पीड़न है जिससे शारीरिक पीड़ा होती है। साथ ही महिला की मानसिक वेदना भी होती है क्षणिक अकाल्पनिक न होकर पर्यन्त स्त्री के मन में अपराध भाव पैदा करती है।"

श्री चतार सिंह मेहता के मतानुसार–"विश्व की लगभग आधी आबादी महिलाओं को पुरुष समान अवसर प्राप्त नहीं है। विश्व में करीब दो– तिहाई महिला निरक्षर है। 70 प्रतिशत निरक्षर है, मात्र 14 प्रतिशत प्रशासनिक पद पर है और 100 सांसद विधानसभा सदस्य है। कानूनी दृष्टि से यह असमानता है। महिला पुरुषों में प्रकृति द्वारा जान, व्यवहार, प्रकृति आदि में अंतर होता है।

घरेलू हिंसा महिलाओं के प्रति की गई हिंसा में प्रमुख है, स्त्रियों को मारना–पीटना, उनको जलाना, दहेज के लिए प्रताड़ित करना, उनके साथ लैंगिक दुर्व्यवहार करना आदि है।

इसके आधार पर कहा जा सकता है कि महिला पर हो रही हिंसा का शिक्षा से घनिष्ठ संबंध है। शिक्षित महिलाएँ अशिक्षित महिलाओं की तुलना में हिंसा की शिकार कम होती है। शिक्षित महिलाओं में अशिक्षित महिलाओं की तुलना में आत्म–विश्वास अधिक होता है और इसी कारण वह आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय रहती है। उनकी यह सक्रियता उनको अपने अधिकारों के प्रति सजग करती है ।

इंटरनेशनल जेंडर फॉर रिसर्च ऑन विमेन के एक अध्ययन में पाया गया कि ऐसी घटनाएँ अशिक्षित परिवारों में 76% से 81% तक घटती है। सभी समूहों में 40% से अधिक महिलाएँ मारपीट की शिकार है। ग्रामीण क्षेत्र में दो–तिहाई महिलाओं ने शारीरिक हिंसा या यौन शोषण की बात स्वीकार की, 42% महिलाओं को डंडे से पीटा गया है, 53% मामलों में इसकी शुरुआत गाली–गलौज से हुई।

डॉ॰ बैली के अनुसार :– "महिला को शारीरिक–मानसिक क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया व्यवहार घरेलू हिंसा के अंतर्गत आता है।"

इस परिभाषा का अर्थ यह हुआ कि एक महिला को केवल मानसिक या शारीरिक क्षति पहुँचाना ही हिंसा के अंतर्गत नहीं आता अपितु महिलाओं को

क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया व्यवहार की महिला पर किये गये हिंसा के अंतर्गत आता है।

रीडरलैण्ड के अनुसार :– हिंसा से तात्पर्य एक ऐसे व्यवहार या कार्य से है जिसमें नारी को शारीरिक व मानसिक रूप से चोट पहुँचाना है। यह कार्य व व्यवहार उसके पति या परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा किया जाता है।"

2. **बीजिग सम्मेलन 1995 में** :– भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग ने एक रिपोर्ट तैयार की थी जिनमें महिलाओं के 11 समस्याओं को महत्वपूर्ण माना गया था और उन पर ध्यान केन्द्रित करने की वचनबद्धता घोषित की गयी थी :

- महिलाओं की प्रगति के लिए संस्थागत पद्धतियों की अपर्याप्तता।
- बच्चियों के विरुद्ध निरन्तर एवं संस्थागत भेदभाव।
- गरीबी का स्त्रीकरण।
- वृहत् आर्थिक नीतियों में लैंगिक अंधापन।
- आर्थिक व्यवस्था एवं पर्यावरणीय स्थायित्व में महिलाओं में योगदान की अदृश्यता।
- निर्णय करने वाली संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं में महिलाओं की कमतर भागीदारी।
- साक्षरता, शिक्षा और स्वास्थ्य में लैंगिक दूरी।
- महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की बढ़ती प्रवृति।
- वैधिक हकों की प्राप्ति में महिलाओं को होने वाली बाधाएं।
- लिंग आधारित सामाजिक नियम।
- संचार माध्यमों के द्वारा लैंगिक रूढ़ियों का बार–बार प्रदर्शन एवं नकारात्मक चित्रण।

बीजिंग महिला सम्मेलन में महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा पाँच मूर्त्त प्रतिबद्धताओं की घोषणा की गयी :–

- शिक्षा बजट को सरल विकास उत्पादन का 6 प्रतिशत तक करना।
- महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों की जांच के लिए एक मानवाधिकार आयुक्त की नियुक्ति करना।
- महिलाओं के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनाना।
- घोषित कारवाई के कार्यान्वयन के अनुश्रवण के लिए एक समुचित तंत्र की स्थापना करना।
- महिलाओं और बच्चियों के स्वास्थ्य की देखभाल संबंधी योजनाओं में सुधार करना।

3. इंटरनेशनल सेन्टर फॉर रिसर्च ऑपफ वोमेन :– अपने अध्ययन में पाया कि घरेलू ¯हसा का एक रूप स्त्रियों की पीटाई है जो कि अशिक्षित परिवारों में बहुत अधिक (76 प्रतिशत – 81 प्रतिशत) है हालांकि सभी समूहों में स्त्रियों के साथ मारपीट की जाती है जिसका प्रतिशत 40 है।

ग्रामीण क्षेत्रों में दो–तिहाई महिलाओं ने शारीरिक हिंसा या यौन शोषण की बात स्वीकार की। 42 प्रतिशत महिलाओं को डंडे से पीटा गया और 53 प्रतिशत मामलों में इसकी शुरुआत गाली–गलौज से हुई और महिलाएं समुचित विकल्प के अभाव में, अधिकारों की अज्ञानता, बच्चों के मोह, लोक–लाज, पारिवारिक प्रतिष्ठा और डर के कारण ये महिलाएं घरेलू ¯हसा को सहती है।

संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणा पत्र के अनुसार–नस्ल, रंग, लिंग, धर्म, भाषा, राजनीतिक या राष्ट्रीय या सामाजिक उद्गम स्थान, विचारधारा, जन्म आदि से संबंधित विचारधारा के बिना सभी प्रकार के अधिकार एवं स्वतंत्रताओं का मानव अधिकारी है सभी व्यक्ति स्वतंत्र है तथा उसकी गरिमा और अधिकार समान है।

महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में महिला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गई। महिला सशक्तिकरण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वतंत्रता है।

घरेलू हिंसा से पीड़ित महिला की संख्या लगातार बढ़ रही है आज की पीड़ित युवा महिला की संख्या लगातार बढ़ रही है। आज की महिला किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा की शिकार होती है। आंकड़ा बताता है कि 37 प्रतिशत विवाहित महिला घरेलू हिंसा की शिकार होती है, 19 प्रतिशत महिला दहेज के लिए मारी जाती है। वहीं 4 प्रतिशत महिला प्रतिदिन पति व रिश्तेदारों द्वारा अपमानित होती है। हिंसा में बिहार 56 प्रतिशत के साथ सबसे ऊपर है झारखण्ड में 30 प्रतिशत महिला घरेलू हिंसा से पीड़ित है जिसमें 6 प्रतिशत शहरी क्षेत्र और 27 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ हैं।

महिलाओं पर हो रहे हिंसा को तीन भागों में बांटा गया है :–

1. आपराधिक हिंसा, 2. घरेलू हिंसा, 3. सामाजिक हिंसा।

मानव संसाधन मंत्रालय के महिला एवं बाल विकास के प्रतिवेदन के अनुसार भारत में प्रत्येक 54 मिनट में एक महिला का बलात्कार, 15 मिनट में छेड़छाड़, 26 सेकेण्ड में बदसलूकी, 102 मिनट में दहेज के कारण हत्या होती है।

एक रिपोर्ट के अनुसार घरेलू हिंसा का आँकड़ा :– नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार पति और रिश्तेदारों द्वारा महिला में हिंसा के मामले में एक साल में 9.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

1. **भ्रूण हत्या** :– शिशु हत्या भ्रूण निरीक्षण से कन्या भ्रूण पता चलने से गर्भपात करा दिया जाता है या जन्म के बाद शिशु का गला दबाकर या नमक खिलाकर मार दिया जाता है यह भी घरेलू हिंसा के अंतर्गत आता है सरकारी संगठन के सूचना के आधार पर प्रत्येक वर्ष 20 लाख से ज्यादा कन्या भ्रूण की हत्या की जाती है।
2. **लिंग–भेद** :– नवजात शिशु का जन्म से लिंग की समझ नहीं होता है ये प्राकृतिक है मानव शिशु को लड़का या लड़की इस भेद को ही लैंगिक भिन्नत कहते हैं। ये भेद हम समाज के लोग ही निर्धारित किये हैं। काम का बँटवारा भी लिंग के आधार पर होता है। हमें बचपन से ही समाज और संस्कृति के जरिए सिखाया जाता है हमें क्या पहनना है? क्या खेलना है? जेसे–लड़का पैंट–शर्ट पहनेगा बैट–बॉल से खेलेगा, कबड्डी खेलेगा, बाल छोटा रखेगा आदि। लड़की फ्राक पहनेगी, झूला झूलेगी, गुड़िया एवं चुल्हे चौके के बर्तन से खेलेगी, लंबे बाल रखेगी। इस सीखने की प्रक्रिया को समाज में माता–पिता एवं शिक्षक की अहम भूमिका होती है।
3. **सामाजीकरण की प्रक्रिया** :– समाज के द्वारा बनाये रीति–रिवाज, संस्कृति को ही हम अपनाते हैं। इसके अनुसार काम करते हैं। सामाजीकरण जन्म से शुरू होकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है यही प्रक्रिया हमें समाज में रहने लायक बनाता है और हमलोग समाज में एक क्रियाशील सदस्य की तरह रहते हैं। समाजीकरण की ही क्रिया स्त्री–पुरुष में भेद का मुख्य कारण है। स्त्री–पुरुष भेद का और भी कारण रीति–रिवाज है।

महिलाओं के विरुद्ध सर्वभेदभाव समापन समझौता :– 18 दिसम्बर 1979 संयुक्त राष्ट्र महासंघ की महासभा में महिलाओं पर होने वाले भेदभाव को दूर करने के लिए स्वीकृति किया गया। यह 3 दिसम्बर 1981 को लागू हुआ। 15 जनवरी 1998 तक 161 राष्ट्र इसका अनुमोदन कर चुका है।

25 जून 1983 को भारत ने इसके अनुच्छेद 16(1) और (2) एवं अनुच्छेद 29(1) कुछ संशोधन के साथ महिलाओं के विरुद्ध सर्वभेदभाव समापन समझौता का अनुमोदन किया। यह भारत के किसी भी समुदाय के निजी मामले में दखल न देने की नीति से संबद्ध है।

नैरोबी कान्फ्रेंस :– संयुक्त राष्ट्र द्वारा सन् 1985 में नैरोबी में प्रथम विश्व महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। उसमें महिलाओं की उपलब्धि की समीक्षा की गयी और गैर सरकारी संगठन की मंच की ओर आने की रणनीति तय की गई। सन् 2000 में महिलाओं की प्रगति के लिए ठोस कदम उठाया जा सके।

1. वैश्वीकरण एवं महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण
2. महिला विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा अन्य सूचना युग।
3. महिला का नेतृत्व।
4. मानव सुरक्षा एवं सामाजिक संरक्षण।

घरेलू हिंसा अधिनियम :– यह अधिनियम 2005 में बना और 26 अक्टूबर 2006 में भारत में लागू हुआ। सेक्शन 2(ए) उन सभी महिलाओं की मदद करता है जो किसी भी रूप में प्रतिवादी के साथ घरेलू हिंसा रखती है। इस अधिनियम के तहत महिला मुकदमा दायर कर सकती है–जिस व्यक्ति ने उसके साथ घरेलू हिंसा किया है।

सेक्शन 2(जी) के अनुसार कोई भी पुरुष जो पीड़ित महिला के रिश्तेदार या घर का सदस्य हो प्रतिादी कहलाता है। ये पति, सास, ननद, देवर, जेठ, जेठानी कोई भी हो सकता है।

ड्वाकरा :– ड्वाकरा आई०आर०डी०पी० योजना से जुड़ी एक सहायक योजना है, जो केवल ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने के लिए राज्य सरकार की ओर से शुरू किया गया है। ड्वाकरा के द्वारा महिलाओं की आर्थिक आय सुरक्षित होती।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्था इस लक्ष्य को पूरा करने में सहयोग करती है। चूँकि किसी महिला का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना जरूरी है। महिलाओं के जीवन स्तर बेहतर बनाने के लिए इस योजना के

तहत विशेषकर गाँव की गरीब महिला को लाभ मिलता है।

डा० राम अहूजा के अनुसार–"महिला उत्पीड़न के अन्तर्गत घरेलू हिंसा महिलाओं के प्रति की गई हिंसा के प्रमुख कारण है स्त्रियों को मारना–पीटना, जलाना, दहेज के लिए प्रताड़ित करना, उनके साथ लैंगिक दुर्व्यवहार करना आदि प्रमुख है। इस तरह का अत्याचार शिक्षित महिलाओं की अपेक्षा अशिक्षित महिलाओं में अधिक होती है।

सीवर्ड के कथनानुसार–"उपलब्धियों के क्षेत्र में पुरुषों का एकाधिकार कायम रखने के लिए महिलाओं के लिए जैविक आधार पर आधारित कार्यों एवं सामाजिक योगदान के मार्ग में अड़चन खड़ी करके अपर्याप्त नौकरी में जनसंख्या के अर्थ प्रतिबंधित भाग को अलग रखा जाता है।

एम०एम० अंसारी के मतानुसार–"बलात्कार महिला के साथ किया गया क्रूरतम उत्पीड़ना है जिससे शारीरिक पीड़ा होती है। साथ ही महिला को मानसिक वेदना भी होती है। क्षणिक अकाल्पनिक न होकर जीवन पर्यन्त स्त्री के मन में अपराध भाव पैदा करती है।

संदर्भ :–

1. जैन, अरविंद (2000), यौन हिंसा और न्याय की भाषा
2. डॉ० राजकुमार (2003), महिला एवं विकास, पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली–110002
3. डा० खंडेलामान चन्द्र (2006), आधुनिक और महिला उत्पीड़न, पाइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर–302003
4. शर्मा सुभाष (2006), भारतीय महिलाओं की दशा, आधार प्रकाशन, प्राईवेट लिमिटेड हरियाणा
5. नायणी प्रकाशन नारायण–लिंग और समाज, रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली
6. मासिक पत्रिका
7. प्रतियोगिता दर्पण (2007), घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005
8. प्रतियोगिता दर्पण (2008), नई सदी में महिला सशक्तिकरण के अभिनव प्रसाद
9. योजना (2008), अनैतिक व्यापार, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली–110003
10. हिन्दुस्तान समाचार पत्र (2008), घरेलू दहेज निषेध कानून, पटना, राँची, दिल्ली और लखनऊ से प्रकाशित (14 जनवरी, 2008).

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 7, No. – 5, March 2020
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

बैगा जनजाति में प्रचलित नृत्य (म. प्र. की बैगा जनजाति के विशेष संदर्भ में)

श्रीमती विभा पाण्डेय
शोधार्थी, इतिहास (विभाग), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर
डॉ. अर्चना देवलिया, शोध निर्देशिका

म.प्र. को भारत का हृदय प्रदेश कहा जाता है। म.प्र. भारत के मध्य में स्थित होने के कारण भारत का हृदय प्रदेश कहलाता है। म.प्र. अपनी विशिष्ट जनजातीय संस्कृति के कारण एक अलग पहचान रखता है।

जनजाति मानवीय समाज का वह वर्ग है जो आज के इस सभ्य समाज में भी मानव के आदिकाल को चित्रित करता है और अपने पिछड़ेपन के कारण आदि मानव के रूप में जाना जाता है। जनजाति एक निश्चित भू–भाग में रहती है, एक विशेष प्रकार की भाषा बोलती है। आदिकालीन धर्म, प्रथा तथा परम्परा को मानती है। भारतीय संविधान की अनुसूची में अंकित होने के कारण आदिवासी समुदायों को अनुसूचित जनजातियाँ कहा जाता है। आदिम जनजातियों को अनुसूचित करने का प्रथम प्रयास 1931 की जनगणना में किया गया था। वर्तमान में भारत की अनुसूची में म.प्र. के 43 जनजाति समूह सम्मिलित है। जिसमें बैगा म.प्र. की विशेष पिछड़ी जनजाति मानी जाती है। बैगा म.प्र. की एक प्रमुख आदिम जनजाति है। बैगाओं के संबंध में सर्वप्रथम जानकारी 1867 में सिवनी जिले के बंदोबस्त अधिकारी कैप्टन थामस के द्वारा दी गई है। बैगा स्वयं को जंगल का राजा बताते है। बैगा जनजाति की उत्पत्ति के सम्बंध में कोई लिखित प्रमाण प्राप्त नही होता है। इनकी उत्पत्ति के सम्बंध में कई मिथक कथाएँ प्रचलित है। बैगा आदिवासी को म.प्र. का मूल निवासी भी कहा जाता है।

बैगा जनजाति प्रमुख रूप से म.प्र. के सतपुड़ा पहाड़ियों के पूर्वी भाग में मंडला, समनापुर, डिंडौरी, बालाघाट सरगुजा बिलासपुर तथा अमरकंटक के पहाड़ी अंचलो में निवास करती है।1 जबलपुर संभाग के मण्डला तथा डिंडौरी में बैगाओं का प्रमुख निवास स्थान है। बैगाचक क्षेत्र जहाँ पर बैगा जनजाति प्रमुख रूप से निवास करती है यह क्षेत्र डिंडौरी जिले के विकासखण्ड बजाग करिजिया एवं समनापुर के अन्तर्गत सम्पूर्ण बैगाचक क्षेत्र आता है। इस क्षेत्र में रहने वाले बैगा आज भी अति जंगली जीवन बिता रहे हैं।

'1931 की जनगणना के अनुसार बैगा आदिवासियों की आबादी 37,086 थी इसमें तत्कालीन सेंट्रल इंडिया की आबादी शामिल नही है।'2

बैगा जनजाति के व्यक्ति का रंग काला तथा हल्का भूरा होता है। नाक चौड़ी होती है, मोटे होंठ होते हैं इनकी त्वचा शुष्क तथा रूखी होती है। बैगा अन्य जनजातियों की अपेक्षा कद में लंबे होते है बैगाओं का शरीर सुगठित होता है। बैगा जनजाति सर्वाधिक गुदनाप्रिय जनजाति है। इनके सम्पूर्ण भारीर में गुदना गुदा होता है। बैगा स्त्रियाँ अपने सम्पूर्ण शरीर में गोदना गुदवाती है। इसे वे सौंदर्य का प्रतीक मानती है।

बैगा जनजाति में परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं। समाज में पुरूष को प्रधानता प्राप्त है। बैगा समाज में आंतरिक रूप से स्त्रियों को कई प्रकार की स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता प्राप्त है। स्त्रियों को विवाह के अवसर पर अपनी पसंद से विवाह करने की अनुमति प्राप्त है। बैगा एक अत्यंत पिछड़ी हुई जनजाति है। अत्यंत दुर्गम एवं सघन वनों में रहने के कारण इन तक सभ्यता का प्रकाश नही पहुँच पाया है। इनकी आर्थिक स्थिति अत्यंत निम्न है। बैगा जनजाति के लोगो में अशिक्षा व्याप्त है। अंधविश्वास से ग्रसित होने के कारण सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का भी लाभ नही ले पाते।

अत्यंत विषम परिस्थितियों, अभावों एवं कष्टों में रहने के बावजूद इनमें जीवन के प्रति अत्यंत उत्साह दिखाई देता है। ये अपने जीवन को अत्यंत आनन्द के साथ जीते है। अपने सभी पर्व तथा उत्सव में नृत्यगान करते है। बैगा एक अत्यंत नित्यप्रिय जनजाति है। बैगा जब अत्यंत उत्साह से भर जाते है और प्रसन्न होते है तब उसकी अभिव्यक्ति नृत्य के माध्यम से होती है।

बैगा जीवन में नृत्य का एक प्रमुख स्थान है। बैगा नृत्य में बैगा संस्कृति की स्पष्ट –झलक दिखाई देती है। विषय वस्तु की दृष्टि से बैगा नृत्य को चार भागों में बाँटा जा सकता है –

धार्मिक लोक नृत्य–धर्म से सम्बन्धित होते हैं। मड़ई मेले में किया जाने वाला नृत्य, ऋतु विशेष के नृत्य, सामाजिक उत्सवों में किया जाने वाला नृत्य जन्म संस्कार, विवाह, त्यौहार पर किया जाने वाला नृत्य।

नृत्य के परिधान :– बैगा जनजाति नृत्य के अवसर पर विशेष रूप से सजती है। बैगा पुरूष तथा बैगा स्त्रियाँ दोनों ही खूब–सजधज कर नृत्य करते हैं। बैगा पुरूष शरीर पर सलूखा तथा काली जैकेट पहनते है। कमर में घेरदार साया जो लहंगे के समान होता है। धारण करते है। सिर पर पगड़ी पहनकर उस पर मोरपंख की कलगी लगाते है। गले में रंगीन मूंगो की माला धारण करते हैं। सिर पर पगड़ी पहनकर उस पर मोरपंख की कलगी लगाते है। गले में रंगीन मूंगो की माला धारण करते हैं। बैगा स्त्रियाँ विशेष रूप से तैयार होती है। अपने केशो को विशेष प्रकार से सजाती है सिर पर बालों का जूड़ा बनाकर उस पर मोरपंख की कलगी लगाती है वीरन घास की माला बनाती है और उसे जूड़ो में बांधती है। कान, नाक, गले, पैर, हाथ, शरीर के सम्पूर्ण अंग पर आभूषण धारण करती है। मूंगी धोती बैगा महिलाएँ शरीर पर धारण करती है।

बैगा जनजाति में प्रचलित नृत्य :– बैगा जनजाति विभिन्न प्रकार के नृत्य करती है। जिसमें विशेष रूप से प्रचलित नृत्य **कर्मा (करमा) नृत्य** है – यह नृत्य कर्म से सम्बंधित है। म.प्र. के डिंडौरी जिले में यह पर्व विजयादशमी के अवसर पर प्रारंभ होता है। जो वर्षा ऋतु तक चलता है। कर्मा नृत्य रातभर चलता है इस नृत्य में स्त्री तथा पुरूष दोनों मिलकर नृत्य करते हैं। स्त्रियाँ कमर पर हाथ रखकर नृत्य करती है। इस नृत्य को करते समय कदंब वृक्ष की एक टहनी जमीन पर गाड़ दी जाती है और उसके चारो ओर स्त्री तथा पुरूष मिलकर नृत्य करते हैं। यह नृत्य मादर वादय यंत्र बजाकर प्रारंभ किया जाता है। कर्मा नृत्य चार प्रकार से किया जाता है करमा खरी, करमा खाप, करमा लहकी तथा करमा झूलनी।

विलमा नृत्य :– विवाह के अवसर पर विलमा नृत्य किया जाता है विलमा का शाब्दिक अर्थ है विरह या विछोह। विवाह के समय यह नृत्य किया जाता है। यह नृत्य विवाह की समाप्ति पर वर तथा वधु पक्ष दोनों के द्वारा किया जाता है। वधु पक्ष की स्त्रियाँ जब यह नृत्य करती है तो उदास होती है क्योंकि उन्हें कन्या से बिछड़ने का दुख होता है। वहीं वर पक्ष के नतर्क उल्लास तथा उमंग के साथ उछल–उछलकर खुश होकर नृत्य करते हैं। यह एक सामूहिक नृत्य होता है।

सुआ नृत्य :– सुआ नृत्य बैगा जनजाति की महिलाओं के द्वारा किया जाता है। यह नृत्य अक्टूबर–नवम्बर के महीने में किया जाता है। यह बैगाओं का धार्मिक नृत्य है यह नृत्य गौरा विवाह के अवसर पर किया जाता है जिसमें महिलाएँ दिन में सुआ नृत्य करती है और रात में गौरा माता के समक्ष गीत गाकर उनकी आराधना करती है इस नृत्य को करने के लिए महिलाऐं दो टोलियाँ बनाती हैं। एक टोली नृत्य तथा गीत प्रारंभ करती है और दूसरी टोली उसे दोहराती है। इस नृत्य में एक महिला सिर पर धान की टोकरी रखती है और उस पर मिट्टी का बना सुआ (तोता) रखती है और फिर यह नृत्य की टोली पूरे गाँव में घूमघूम कर नृत्य करती है। गाँव के प्रत्येक घर के लोग उन्हें अनाज व धन देते है। इस नृत्य से सामाजिक सद्भाव बढता है।

रीना नृत्य :– रीना नृत्य बैगा महिलाओं द्वारा किया जाता है। यह एक प्रतिस्पर्धात्मक लोकनृत्य है जिसमें एक गाँव की महिलाओं का समूह दूसरे गाँव में जाकर नृत्य करता है। यह नृत्य दीपावली के आस–पास किया जाता है। इसमें स्त्रियाँ दो कतारो में आमने सामने अर्धचन्द्राकार गोले में खड़ी होकर नृत्य करती है। रीना नृत्य तीन प्रकार की तालो को लेकर किया जाता है।

'री–रीना दउवा अमरैया में काहे मारे
काहे मारे दउवा अमरैया में काहे मारे
री रीना दउवा काहे मारे।'

झरपट नृत्य :– झरपट नृत्य बैगा स्त्री तथा पुरूष दोनो मिलकर करते है। इस नृत्य के माध्यम से स्त्री तथा पुरूष एक दूसरे के साथ छेड़छाड़ करते है और अपना मनोरंजन करते है। झरपट का अर्थ होता है –झड़पकरना यह नृत्य अत्यंत सरल गति से किया जाता है। यह नृत्य युवक तथा युवती की छेड़छाड़ का नृत्य है और यह नृत्य रातभर चलता है इस नृत्य को करके युवक तथा युवती अपने मनोभवों का व्यक्त करते, हंसी ठिठोली करते है और अपना मनोरंजन करते है।

दशेरा नृत्य :– दशेरा नृत्य बैगाओं के आदिम उल्लास का नृत्य है। यह नृत्य बैगाओं का आदिम नृत्य है। इस नृत्य का प्रारंभ दशेरा से होने के कारण इसे दशेरा या दशराहा नृत्य कहा जाता है। इस नृत्य में गाँव का एक नर्तक दल दूसरे गाँव जाकर नृत्य करता है। यह नृत्य

सामाजिक सद्भाव को बढाने में सहायक होता है, इससे बैगाओं में आपसी सम्बंध मजबूत होते हैं। सामाजिक सोहार्द्र का वातावरण निर्मित होता है।

भड़ौनी नृत्य :– बैगा जनजाति द्वारा विवाह के समय मण्डप में किया जाने वाला नृत्य भडौनी नृत्य के नाम से जाना जाता है। इस नृत्य में वधुपक्ष की महिलाएँ विवाह के समय उपस्थित वरपक्ष के लोगों को गाली गाती है और नृत्य करती है यह बैगाओं का सामाजिक उत्सवों में किया जाने वाला नृत्य है। गाली गाकर महिलाएँ वरपक्ष के लोगो के साथ हंसी ठिठोली करती है और उनकी गाली तथा नृत्य में पूरा विवाह कब सम्पन्न हो जाता है पता ही नही चलता।

परघोनी नृत्य :– परघोनी नृत्य भी विवाह के समय किया जाता है इस नृत्य में पुरूष विचित्र वेशभूषा धारण कर नृत्य करते है। इस नृत्य में वरपक्ष के लोग नकली हाथी बनाकर नृत्य करते हैं। ढोल की थाप के साथ यह नृत्य किया जाता है।

तापड़ी नृत्य :– तापड़ी नृत्य ताली बजाकर किया जाता है। इसलिए इसे तापड़ी कहा जाता है। यह नृत्य बैगा महिलाओं द्वारा किया जाता है। महिलाएँ अपने उत्साह व उमंग को इस नृत्य के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। इसमें नृत्य के तीन क्रम होते हैं। उसी क्रम से महिलाऐं नृत्य करती है। प्रथम क्रम में महिलाऐं एक दूसरे के आमने सामने दो कतारों में खड़ी हो जाती है और एक दूसरे के हाथ में ताली बजाकर नृत्य करती है। दूसरे क्रम में एक कतार की स्त्रियाँ दूसरे कतार की ओर पीठ करके घुटनों पर झुककर जोर–जोर से तालियाँ बजाकर नृत्य करती है तीसरे क्रम में सभी स्त्रियाँ एक गोला बनाकर सभी नीचे की ओर झुककर हाथों से ताली बजाकर नृत्य करती है।

इस प्रकार बैगा समाज में स्त्रियाँ तथा पुरूष दोनों मिलकर उत्साह के साथ नृत्य करते हैं।

नृत्य के वाद्ययंत्र :– बैगा जनजाति द्वारा नृत्य के अवसर पर विभिन्न वाद्य यंत्रो का प्रयोग किया जाता है। जिसमें प्रमुख है –ढोल, नगाड़ा, मांदल, टिमकी, झाँझ, बाँसुरी, मंजीरा।

उपसंहार :– इस शोधपत्र के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त होती है कि बैगा जनजाति एक अत्यंत पिछड़ी जनजाति है उसकी अपनी एक अलग विशिष्ट संस्कृति है जिसकी झलक हमें उनके नृत्य गान में दिखाई देती है। बैगा जनजाति अपने सभी धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों में नृत्य करते है। नृत्यगान उनके अंग–अंग में बसा हुआ है जिसकी अभिव्यक्ति उनके नृत्यों में दिखाई देती है। उनका नृत्य सहज, सरल है। तथा बनावटीपन दिखाई नहीं देता। जब बैगा एक–दूसरे के हाथों में हाथ लेकर नृत्य करते है। तब उनमें आपसी भाई–चारा तथा प्रेम की भावना बढती है। आपसी द्वेश तथा द्वन्द्व का स्थान बैगा समाज में दिखाई नही देता। बैगा समाज में प्रत्येक व्यक्ति बूढ़ा, जवान, बच्चे सभी नृत्य करते हैं। महिलाओं पर किसी प्रकार की पाबन्दी नही होती वे जी भर कर नृत्यगान करती है। स्त्रियों तथा पुरूषों मे किसी प्रकार का कोई भेदभाव नही होता। स्त्रियाँ पुरूषों के साथ हंसी, ठिठोली करती है और नृत्य कर अपना मनोरंजन करती है। बैगा समाज में महिलाओं को स्वतंत्रता दी गई है नृत्य के माध्यम से युवक तथा युवती समीप आते हैं। नृत्यों के माध्यम से बैगा जनजाति के सदस्य एक–दूसरे के समीप आते हैं। एक गाँव का नर्तक दल जब दूसरे गाँव जाता है। तब उनके आपसी सम्बंध मजबूत होते हैं। समाज में सामाजिक भाईचारे की भावना बढती है। अत्यंत निर्धन होने के बावजूद इनमें जीवन के प्रति ललक बनी रहती है। जो नृत्य के माध्यम से दिखाई देती है। नृत्य बैगाओं के मनोरंजन तथा जीवन जीने का एक साधन है। इनके नृत्यगान में इनकी संस्कृति की झलक दिखाई देती है वे अपने नृत्य तथा गानों के रूप में अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोकर रखे हुए है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. बसन्त निरगुणे – सम्पदा बैगा म.प्र. की जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का साक्ष्य, पृष्ठ क्र. 84
2. पी.आर. नायडू – भारत के आदिवासी विकास की समस्याऐं, पृ. 39
3. डॉ. विजय चौरसिया – प्रकृति पुत्र बैगा, पृष्ठ क्र. 91
4. हरि नारायण दत्त, श्रीमति जसप्रीत बाजवा – आदिवासी स्वर 3 संस्कार व प्रथाऐं।
5. कैप्टन जे. फोरसिथ – मध्यभारत के पहाड़ी इलाके।